अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

ढूँढ निकालो कि जगत् की कौन-सी वस्तु इतनी आकर्षक है कि वह तुम्हें परमात्मा की ओर न जाने देकर जगत् में खींच लाती है। एक बार उसे उलट-पुलट कर देखो। वह इतनी तुच्छ है कि एक बार विवेक की दृष्टि से पूर्णतः देख लेने पर फिर उसका प्रलोभन नहीं रहेगा।

आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
वृन्दावन

आनन्द सत्संग पत्रक

2016-2017

साधन का रस सत्सङ्ग के द्वारा ही प्राप्त होता है। जप, तप, व्रत, उपवास, दान आदि भी साधन हैं, पर सत्सङ्ग के बिना वे रसहीन हो जायेंगे; केवल क्रिया मात्र रह जायेंगे।

आनन्द
सत्संग पत्रक

(2016–2017)

संकलन

आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर

वृन्दावन

श्रीगुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर

त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पयेत् ।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆❖◆

श्रीअशोक मोदी – अमेरिका
के
सौजन्य से
आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
आनन्द वृन्दावन, वृन्दावन
द्वारा
वितरणार्थ प्रकाशित

मुद्रण–संयोजन
श्रीहरिनाम प्रेस, लोई बाजार, वृन्दावन–281121
दूरध्वनि : 7500987654

शुभाशंसा

"आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर" संस्था पिछले दो वर्षों से परम पूज्य महाराजश्री की गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर "आनन्द सत्सङ्ग पत्रक" का प्रकाशन एवं प्रसाद रूप में वितरण का शुभ कार्य सम्पादन करती रही है।

इस वर्ष की गुरुपूर्णिमा पर परम पूज्य महाराजश्री का यह अलौकिक प्रसाद-"आनन्द सत्सङ्ग पत्रक 2016-2017" आपके हाथों में है। इसमें पूज्य महाराजश्री के 63 चुने हुए उपदेशों का संकलन है। संकलन का श्रेय साध्वी सुश्री कञ्चन जी को है। इनका यह कार्य प्रशंसनीय है।

हमें पाठकों से आशा है कि वे इस 'पत्रक' में संकलित परम पूज्य महाराजश्री के उपदेशों को लगन पूर्वक पढ़कर उस पर मनन कर अपने इसी जीवन में आत्मसात कर अपने को सफल एवं धन्य बनावेंगे।

विनयावनत

सच्चिदानन्द

मङ्गलाचरण

यद् भाति भातु भविकं भुवि तस्य भूया-
न्नाहं भवामि न च भामि पृथक् प्रपूर्णः।
भूमाहमस्मि विभवो विभयोऽद्वितीयः
सद्भावभास्तिभवोऽनुभव स्वभावः॥

'जो भास रहा है, भले ही वह भासा करे। इसी धरती पर उसका कल्याण हो। लेकिन मैं तो सबसे निराला परिपूर्ण हूँ। मैं न होता हूँ और न भासता हूँ। मैं भवभय एवं द्वैत से रहित 'भूमा' हूँ। मेरे सद्भाव से भव का भान होता है। अनुभव ही मेरा अपना स्वभाव है॥'

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 1

हमारा यह निश्चित मत है, अनुभव है और लोक-व्यवहार में ऐसा देखा-सुना है कि यदि कोई उत्साह, धैर्य और साहस से आसपास रहने वाले लोगों की रहनी-सहनी की अपेक्षा न रखकर ईमानदारी के साथ व्यवहार करता जाय तो थोड़े ही दिनों में अधिकाधिक जनता उस पर विश्वास करने लगती है। व्यवहार के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिये इससे उत्तम कोई मार्ग नहीं है कि लोग उस पर विश्वास करें।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

तुम जिस विषय पर विचार करो, अपने जीवन की दृष्टि से करो। एक क्षण में ही तुम्हें पता चल जाएगा कि वह तुम्हारे जीवन को ऊपर उठाता है या नीचे गिराता है। तर्क और युक्तियों के जाल में उलझ जाओगे तो तुम्हारा जीवन आश्रयहीन हो जाएगा।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

ढूँढ़ निकालो कि जगत् की कौन-सी वस्तु इतनी आकर्षक है कि वह तुम्हें परमात्मा की ओर न जाने देकर जगत् में खींच लाती है। एक बार उसे उलट-पुलट कर देखो। वह इतनी तुच्छ है कि एक बार विवेक की दृष्टि से पूर्णतः देख लेने पर फिर उसका प्रलोभन नहीं रहेगा।

❖◆❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 2

श्रीगुरुपूर्णिमा पर्व पर

गुरु की महिमा केवल शिष्य ही समझ सकता है, सो भी तभी जब गुरु उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं। और उन्हें कोई जान नहीं सकता, क्योंकि वे अपने को गुप्त रखते हैं। शिष्य जानता है कि मेरे गुरुदेव सर्वज्ञ हैं, वे मेरे और चराचर जगत् के सम्पूर्ण रहस्यों के एकमात्र ज्ञाता हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं, बड़े-बड़े देवता भी उनकी शक्ति से शक्तिमान् होकर अपना-अपना काम कर रहे हैं, वे परम कृपालु हैं, कृपा परवश होकर ही उन्होंने जीवों की उद्धार लीला का विस्तार किया है। जब वे मेरे हृदय की बात जानते हैं, उसको पूर्ण करने की शक्ति रखते हैं, तब वे परम कृपालु उसे पूर्ण किये बिना रह ही नहीं सकते। यही उनका स्वरूप है। जगत् में जितने भी जीवों का उद्धार करने वाले महात्मा प्रकट हैं, वे सब-के-सब उन्हीं के लीला विग्रह हैं। मैं उनको प्राप्त करके धन्य हो गया हूँ, शिष्य की यह दृष्टि कल्याणकारिणी ही नहीं कल्याण स्वरूपिणी है।

वस्तुतः गुरु के संतोष में ही शिष्य की पूर्णता है। जिह्वा पर 'गुरु' शब्द के आते ही वह गद्-गद् हो जाता है। गुरु को स्मरण कराने वाली वस्तु को देख कर वह लोट-पोट हो जाता है। गुरु के स्मरण में ही समस्त देवताओं का स्मरण अन्तर्भूत है। गुरु सबसे श्रेष्ठ हैं। गुरु साक्षात् भगवान् हैं। गुरु-पूजा ही भगवत्पूजा है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

तस्मै श्रीगुरुवे नमः

उस गुरुदेव को नमस्कार है, जिसने ब्रह्मा होकर मेरे जीवन की सृष्टि की, विष्णु होकर मेरे जीवन का पालन किया। जिसने शिव होकर मेरे दोषों का संहार किया और जो परब्रह्म परमात्मा के रूप में हमारे आत्मा के रूप में प्रकट हुआ– उस गुरुदेव के सामने न 'मैं' है, न 'मेरा' है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 3

आपका मन हमेशा निर्मल प्रसन्न रहना चाहिये और उसको इन्द्रियों को पराधीनता या धन की पराधीनता स्वीकार करके अपने को मलिन नहीं बनाना चाहिये। हमारे दर्शन-शास्त्र में तो दार्शनिकों ने सुख की परिभाषा बताते हुये कहा है-

अन्येच्छानधीनइच्छाविषयत्वं सुखत्वम्।

हम मित्र से मिलना चाहते हैं क्यों? उससे कुछ रुपये लेना चाहते हैं। क्यों? पत्नी को आभूषण बनवाना है। क्यों? वह प्रसन्न रहे। वह प्रसन्न रहे, क्यों? उसके प्रसन्न रहने से मैं भी प्रसन्न रहूँगा। आप क्यों प्रसन्न रहना चाहते हैं? अरे भाई, इसका कोई उत्तर नहीं है। क्योंकि जो प्रसाद है, आनन्द है, वह अपना सहज रूप है, स्वभाव है। जब हम किसी दूसरे के लिये कोई दूसरा काम करते है- जैसे रुपये के लिये मित्र से मिलते हैं, आभूषण के लिये रुपये चाहते हैं, पत्नी के लिये आभूषण बनवाते हैं- तो उसका नाम असली सुख नहीं होता है। सुख तो वह है, जो सर्वथा आत्मनिष्ठ रहता है। सुख इस आत्मा का स्वरूप ही है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है-

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। (7.23.1)

जो व्यापक है, जो सबमें रहता है, उसका नाम सुख है।

यदल्पं तन्मर्त्यम्। (छान्दोग्य 7.24.1)

जहाँ–जहाँ संकीर्णता है, उदीर्णता का अभाव है, वहाँ–वहाँ दु:ख होता है।

असल में समग्र–दृष्टि, सम्पूर्ण–दृष्टि ही आनन्द है।

जिसने परिपूर्ण अद्वितीय आनन्द को जान लिया, उसके लिये संसार में कोई भय नहीं है।

पराधीनता बाहर की भी होती है, अपनी इन्द्रियों की भी होती है, अपनी वासनाओं की भी होती है और अपने पक्षपात की भी होती है। इसलिये किसी भी प्रकार का जो वैमनस्य है, संघर्ष है,–वह हमारी रसानुभूति में बाधक है। जिसको **'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'** इस ब्रह्म रस की, जो अनन्त है, अद्वितीय है, सबमें भरपूर है और जिसमें अपने–पराये का भेद नहीं है, अनुभूति हो गयी, उसको कहीं से भी भय की व्याप्ति नहीं होती।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 4

किसी कक्षा में स्थिरता उपलब्ध करने के लिए बौद्धिक निश्चय एवं मानसिक विश्वास की आवश्यकता होती है। निश्चय ज्ञान का पूर्ववर्ती धरातल है, विश्वास भक्ति की पूर्व पृष्ठभूमि है। यदि सत्संग एवं विवेक के द्वारा निश्चय दृढ़ न होता हो, अपने प्यार एवं साधन पर ही विश्वास न हो तो फलाकार वृत्ति का उदय प्रतिबद्ध हो जाता है। फलाकार वृत्ति के रूप हैं: वैराग्यमयी असंगता एवं रसमयी प्रियता।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

किसी भी पथ से चलो, मन की द्विधा मिटाने के लिए पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है। उसके प्रति जितना विश्वास या समर्पण होता है, उतना ही लक्ष्य निकट होता है। विश्वास में रस है, शुष्कता नहीं।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

देहातिरिक्त आत्मा के बारे में जानने से उत्तर जन्म और परलोक का ध्यान आता है। मुक्ति और उसकी साधना में भी रुचि होती है। राग-द्वेष और मोह के कारण होने वाली अशुभ-प्रवृत्तियों की निवृत्ति होती है। फिर भाई-भतीजावाद का अनौचित्य स्पष्ट हो जाता है। बुरे कर्म का फल भोगना पड़ेगा, यह संस्कार जाग्रत होता है। यह आस्तिकता अनजान में ही मनुष्य के जीवन को शुभ बनाती है।

❖◆❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 5

दु:ख न चाहने पर भी स्वयं मिलता है, इसी प्रकार सुख भी अपने-आप मिलता है। अत: सुख-दु:ख दोनों के लिये प्रयत्न न करें। प्रयत्न उसके लिए करें जो सुख-दु:ख का दाता है। वह परमात्मा बिना चाहे नहीं मिलता, यही उसकी मर्यादा, नियम है।

संसार और कुछ नहीं अपना देह ही है और अहंता-ममता ही माया है जो देह से लिपटी हुई है। इन दोनों को हटाकर अपने तटस्थ, कूटस्थ, असंग आत्मा को जान लिया तो न संसार रहेगा न माया। फिर वहाँ पकड़ने, छोड़ने को कुछ नहीं रह जायेगा।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 6

संचित कर्म भगवत्प्राप्ति के बिना नहीं मिटते और जो भोग हैं, वे भगवदाकार वृत्ति हुए बिना अपना असर डालते रहते हैं। क्रियमाण कर्मों में जो पुण्य-पाप होते हैं, उनमें से जो पुण्य का फल इस जीवन में, स्वर्ग में सुख मिलता है। किन्तु यदि पाप होता है तो इस जीवन में भी दु:ख मिलता है, नरक में भी दु:ख मिलता है और प्रायश्चित्त इन्हीं पापों का किया जाता है। यह पाप है- यह बात भी शास्त्र से ही मालूम पड़ती है और इनका प्रायश्चित्त भी शास्त्र अनुसार ही होता है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

यदि भगवान् से हमारा प्रेम हो जाये तो प्रारब्ध से आने वाली मृत्यु तो समय पर आयेगी और शरीर की डिजाइन भी यही रहेगी, लेकिन हमारे मन में जो सुख-दु:ख बारम्बार होता रहता है, वह मिट जायेगा। यदि हम भगवान् का भजन करें तो सुख-दु:ख नहीं होंगे और हिस्से में प्रारब्ध मिट सकता है। लेकिन यह तभी होगा, जब खूब तीव्र भजन हो। जैसे चांगदेव ने योगाभ्यास करके अपने शरीर की मौत को चौदह बरस भगा दिया था, वैसे ही भजन का तीव्र अभ्यास होने पर प्रारब्ध मिट सकता है। संत तुकाराम अपने भजन के बल पर शरीर सहित भगवान् के धाम में चले गये। यदि भजन करते-करते हमारा शरीर भगवन्मय हो जाये तो वैसा भी हो सकता है।

❖◆❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 7

ज्ञानमार्ग में अपनी परम्परागत, अविचारित, अज्ञानमूलक मान्यताओं को तिलाञ्जलि देने की आवश्यकता होती है। विरुद्ध परिस्थितियाँ हानिकारक नहीं होती, विचारोत्तेजक होती हैं। और, जिस परिस्थिति से लगाव है, वह राग रूप हो या द्वेष रूप, उससे असंग होने की, उसका अधिष्ठान या द्रष्टा होने की प्रेरणा उन विरुद्ध परिस्थितियों से ही प्राप्त होती है। परिस्थितियों की सहिष्णुता नहीं, उनका बाध ही जड़ता के मोह को भंग करता है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

आप असंग आत्मा होने से श्रेष्ठ हैं कि बहिरंग पद-प्रतिष्ठा, प्रशंसा, भोग-राग की प्राप्ति से? आपकी आत्म-तुष्टि कहाँ है? संतोष के बिना साधना निष्प्राण हो जाती है। हाँ, वह संतोष लक्ष्य-प्राप्ति की साधना से नहीं, बाह्य-वस्तुओं की लिप्सा से विरति के रूप में होना चाहिए।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

नाम, यश, ख्याति और कीर्ति के द्वारा अपने को देश-विदेश में व्यापक बनाने की इच्छा या अपने बड़प्पन को सम्पुष्ट करने की इच्छा आत्म निरीक्षण से विमुख कर देती है और मनुष्य को प्रवाह पतित लोगों का गुलाम बना देती है।

❖◆❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 8

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर

भला बताओ, ईश्वर का जन्म लेना कोई काम है? वे तो अजन्मा हैं। अच्छा तो क्या जीव का काम है जन्म लेना? जब आत्मा शुद्ध-बुद्ध-मुक्त होने पर भी अविद्या के वशवर्ती होकर अपने को जन्मवान् और मृत्युमान मानता है, तो भगवान् उसके कल्याण के लिये माया से अपने को जन्मवान् दिखाकर उसका काम बना दे- तभी न जीव और ईश्वर का सख्य हुआ।

एक आदमी अनजान में कुएँ में गिर पड़ा। तो मित्र कौन? जो रस्सी से कुएँ में उतरकर उसको बचाकर ले आवे। मैत्री का तो यही रूप है। तो जीव अनजान है। अनजान है माने अविद्या के वशवर्ती है और भव-कूप में गिर पड़ा। अब ईश्वर क्या करते हैं? माया के सहारे कुएँ में उतरते हैं और जीव को निकाल ले आते हैं। यही तो सख्य है। इसी का नाम तो मैत्री है। अगर जीव की रक्षा के लिये, जीव को बचाने के लिये भगवान् कुएँ में न उतरते तो क्या मैत्री है? तो नारायण, यह भगवान् का सौशील्य, उनका वात्सल्य, उनका औदार्य, उनका प्रेम-परवशत्व, उनका भक्त पक्षपातित्व-इसी में भगवान् की भगवत्ता है। वे कभी-कभी अपने भगवान्-पने को भी न्योछावर कर देते हें। अपनी अपरिच्छिन्नता को भी न्योछावर करके परिच्छिन्न, निर्गुणता को भक्त पर न्योछावर करते हैं तो सगुण, भक्त के प्रेम पर निराकारता को न्योछावर कर देते हैं तब साकार

और अपने कारणत्व को न्योछावर कर देते हैं तो बेटा। ऐसे भगवान् भक्तों के प्रेम से अवतार ग्रहण करते हैं। भक्तों को अभय देना– यह उनका स्वभाव है।

अच्छा देखो, भगवान् जो न होवें वो अगर बनें, तब तो भगवान् को उलाहना भी दिया जाये कि हे भगवान्, तुम ऐसे क्यों बने ? अरे, जब सर्व हैं वो **'अहं च इदं च'**–अहं भी वही और इदं भी वही– जब सब वही हैं तब वे जन्मवाले भी बन जायें तो क्या उलाहना देना, क्या उपालम्भ देना ?

"सर्वं यदयमात्मा ब्रह्म"

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 9

वासनाएँ और पाप कर्म तभी तक रहते हैं जब तक हम ईश्वर से विमुख होकर या अनात्मा से तादात्म्यापन्न होकर अपने को देहादि के रूप में मानते हैं। जहाँ अपने शुद्ध आत्मा में स्थिति हुई अथवा ईश्वरांश के रूप में अपना अनुसन्धान हुआ, वहाँ देहाभिमान साँप की केंचुल के समान छूट कर अलग हो जाता है। अहं भाव में ही वासना और कर्म का निवास है। असल में अनुसन्धान ही सम्पूर्ण अनर्थों का निवर्तक है।

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

शास्त्रों में कैवल्यमोक्ष के दो रूपों का वर्णन है: एक, योगसम्मत असंग दृष्टा का अपने स्वरूप में अवस्थान और दूसरा, वेदान्त सम्मत ब्रह्मात्मैक्य बोध से अविद्या की निवृत्ति होने पर निवृत्ति से उपलक्षित अद्वितीय आत्मा ही मोक्ष है। इन दोनों में अन्य के रूप से संसार का भोग तो क्या, भगवान् का भोग भी नहीं रहता। जहाँ द्वैत रहकर भी छूट गया और उसका भान नहीं हो रहा है अथवा जहाँ द्वैत की सत्ता ही बाधित हो गयी है, वहाँ रसास्वादन करने-कराने की गन्ध भी नहीं।

❖◆❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 10

जप एक वाचिक क्रिया है। मानसिक जप में भी सूक्ष्म रूप से शब्द का उच्चारण रहता है। क्रिया स्वयं में एक धर्म है। जैसे हाथों से धर्म क्रिया होती है, वैसे ही वाणी से भी। परन्तु मन्त्र अथवा नाम का जप धर्म–क्रिया के साथ ही साथ इष्टदेव का स्मारक और भावोद्दीपक भी है। नाम मानस–पटल पर नामी की आकृति उभारता है। इसके प्रति भाव–सम्बन्ध भी देता है। इसमें कुछ समय और लगन की आवश्यकता होती है। सद्‌गुरु की कृपा से मन्त्र–चैतन्य होता है।

जहाँ धर्म साधक का प्रयत्नमात्र है, वहाँ नाम में भगवान् के अनुग्रह की प्रधानता है। प्रत्येक नाम के साथ भगवान् के कृपा प्रसाद का आविर्भाव हो रहा है। जिह्वा पर नाम का आना ही अनुग्रह का लक्षण है। नाम और नामी अभिन्न हैं। नाम का स्फुरण नामी की ही नूपुर–ध्वनि है। यह मन की एकाग्रता के लिए योगमार्ग नहीं है, यह भगवत्सम्बन्ध रूप फल है।

समष्टि का संकल्प तुम्हारे व्यष्टि के संकल्प को अपने अधीन कर सकता है। अत: तुम नि:संकल्प हो जाओ तो ईश्वर तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता है। सच्चा ऐश्वर्य है– निष्कामता। सच्चा सौन्दर्य है– निर्विकारता।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 11

देखो, हमारे जीवन के लिये तो प्रेम ही ईश्वर है, और जहाँ सत्य सिद्धान्त की खोज है, अनुभव है, वहाँ ईश्वर ही प्रेम है। असल में दोनों एक ही साथ हैं- प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। वह तो ऐसा ही है, जैसा यह कहना कि सत्-चित् ही आनन्द है, और आनन्द ही सत्-चित् है। अपने हृदय में जब सत् की प्रधानता प्रतिबिम्बित होती है तब समाधि लगती है, जब चित् की प्रधानता प्रतिबिम्बित होती है तब अज्ञान का नाश हो जाता है और जब आनन्द की प्रधानता प्रतिबिम्बित होती है तो हमारा हृदय प्रीति से भर जाता है। इसलिये चढ़ना हो, आरोहण करना हो तो पहले परमात्मा के आनन्द-स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये और हृदय में परमात्मा के प्रति प्रीति आनी चाहिये। ऐसा होने पर संसार से वैराग्य हो जायेगा। जब विवेक करना हो तो परमात्मा की चित्-प्रधानता का विवेक करना चाहिए और तब संसार से असंगता आ जायेगी। जब शान्ति से समाधि में रहना हो तो परमात्मा की सद्स्वरूपता का चिन्तन करना चाहिये, तब समाधि लग जायेगी। इसलिये प्रेम परमात्मा के आनन्द-स्वरूप का हमारे हृदय में प्रतिबिम्बिन है। हमारे हृदय में जितनी भी प्रीति आती है, वह है भगवान् की छाया, परन्तु हम उसे दुनियादारी की छोटी-छोटी चीजों से जोड़ देते हैं। फिर उसका जो शुद्ध स्वरूप है, वह प्रकट नहीं होता है, भीतर अन्तर्यामी रूप से जो परमेश्वर हमें अपने हृदय में नहीं दिखता है तो दूसरे के हृदय में कोटि प्रयास करने पर भी अच्छी तरह से नहीं दिखेगा।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 12

आप जो साधन करते हैं, उसको आप जिन्दगी भर करने के लिए तत्पर हैं कि नहीं? यदि आप पूछते हैं कि अभी यह साधन हमें कितने दिन और करना पड़ेगा, इससे आगे हम कब बढ़ेंगे, तो इसका मतलब है कि अपने साधन पर आपकी श्रद्धा नहीं है, निष्ठा नहीं है, उसको आप बदलना चाहते हैं। साधन वह होता है, जिसको आप जीवन भर के लिए ग्रहण करते हैं। जप करेंगे। कितने दिन के लिए जप करेंगे? जब तक जीयेंगे, तब तक करेंगे। भगवान् का ध्यान करेंगे। कब तक करेंगे? बाबा, जब तब जीयेंगे तब तक करेंगे। तो जो साधन के बारे में यह सोचता है कि हम इसको छोड़कर आगे कब बढ़ेंगे, वह साधन का अपमान करता है।

दूसरी बात साधन के सम्बन्ध में यह है कि साधन छोटा-बड़ा नहीं होता है। आप जैसा साधन चाहते हैं या आप जैसा अपना जीवन बनाना चाहते हैं, आज ही, इसी समय संकल्प कर लीजिये कि मैं ऐसा हो गया। बस, इसी समय हम उस निष्ठा में परिनिष्ठित हो जायेंगे- यह नहीं कि कब से? हम कब से जप शुरु करेंगे? कल से, परसों से। नहीं, इससे मालूम होता है कि जप में तुम्हारी निष्ठा ही नहीं है। जप शुरू करना है? तो अभी से जप शुरू कर दीजिये! और जप शुरू हो गया-राम, राम, राम.....। कब तक करना है? जब तक प्राण रहेंगे, तब तक करना है और यदि पुनर्जन्म हुआ तो उसमें भी करना है। यदि आप अपने साधन को सर्वश्रेष्ठ समझकर, परमात्मा का रूप समझकर, वही करने के लिए

और उसी में समा जाने के लिए तत्पर नहीं हैं तो आपका साधन कभी चैतन्य नहीं होगा। इसलिए श्रद्धा-चैतन्य, स्मृति-चैतन्य, वीर्य-चैतन्य और समाधि-चैतन्य, जो भी जैसा भी जीवन आपको पसन्द हो उसको कल से नहीं, आज से और आज भी दोपहर के बाद से नहीं, अभी से शुरू कर लो और उसे छोड़ने के लिए नहीं, आजीवन साथ रहने के लिए करो। साधन करके छोड़ने के लिए नहीं होता है, हमेशा करने के लिए होता है। आप अपनी श्रद्धा, स्मृति, वीर्य और समाधि के द्वारा अपने चित्त को अपने लक्ष्य में स्थित कीजिये।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 13

नारायण, कई लोग रास्ते में पड़ी हुई बुद्धि उठा ले आते हैं। माने कई बुद्धि के चोर होते हैं। हम ऐसे लोगों को जानते हैं जो कथा-वार्ता में बैठते हैं तो कुछ सुन लेते हैं, कुछ लिख भी लेते हैं और फिर उसको जाकर ऐसे ढंग से सुनाते हैं कि वह आविष्कार उन्होंने ही किया है। यह उनकी बुद्धि का ही ज्ञान है। तो नारायण, जो रास्ते में पड़ा हुआ पैसा उठाकर ले आया, घर में तो उसके पैसा आ गया, लेकिन उस पैसे का हकदार वह नहीं है भला। ऐसे ही यह रास्ते में पड़ी हुई जो बुद्धि होती है, वह काम नहीं देती है। गुरु-सेवा करके और व्रत का पालन करके जो कायदे से बुद्धि प्राप्त करता है, वह **"कृतधी"** होता है। अपनी बुद्धि अपने वश में होवे।

बुद्धि की स्थिरता के लिए जीवन में छः बातों की आवश्यकता है-

1. कामना की निवृत्ति और आत्म-तुष्टि
2. अनुद्वेग
3. समता
4. एकाग्रता
5. विषय-भोग की प्रवृत्ति में संकोच
6. दोष-त्याग

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 14

भगवान् को एक ऐसी स्थिति में ले जाना कि हम उनके ज्ञान का आदर न करें और अपने ज्ञान के अनुसार उनको चलाना चाहें; उनके दिये हुए आनन्द का आदर न करें और अपने मन का आनन्द उनसे चाहें; उनके दिए हुए जीवन का आदर न करें और दूसरे प्रकार का जीवन चाहें– यह उनका अपमान करना है। हमें तो भगवान् के सामने अपने को ऐसा कर देना चाहिए– "जैसे राखौं वैसे ही रहौं"।

साधन का रस सत्संग के द्वारा ही प्राप्त होता है। जप, तप, व्रत, उपवास, दान आदि भी साधन हैं, पर सत्संग के बिना वे रसहीन हो जायेंगे; केवल क्रिया-मात्र रह जायेंगे। बिना सत्संग के साधन का, भजन का रस, स्वाद बढ़ ही नहीं सकता। सत्संग के बिना स्वयं द्वारा अपनाये हुए साधन में व्यक्ति का अहंकार बढ़ जाता है। फलतः उसकी उन्नति रुक जाती है, निर्माण रुक जाता है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 15

शरद पूर्णिमा पर

यह जो भगवान् की रास–लीला है, यह रस–रूप है। उपनिषदों में आया है–"**रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति**" रस ही भगवान् का स्वरूप है और हमारा मन रस की ओर ही ज्यादा आकृष्ट होता है। देखो, आचरण और समाधि के लिये सत् पर्याप्त है। ज्ञान और निर्द्वन्द्वता के लिये चित् पर्याप्त है। परन्तु बिना आनन्द के हमारा मन कहीं लगता नहीं है। तो भगवान् ने लोगों का मन अपनी ओर खींचने के लिये यह आनन्द–रस की लीला रची। श्रीधर स्वामी ने इस प्रसंग पर टीका करते हुये लिखा है कि जो अत्यन्त विषयी पुरुष हैं, उनको भी अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये और जो निर्द्वन्द्व जीवन्मुक्त महापुरुष हैं, जिनका लोक में कोई कर्त्तव्य नहीं है, उनके मनको भी अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये भगवान् ने यह लीला की।

देखो, अर्थ चाहना दूसरी बात है, धर्म चाहना दूसरी बात है, भोग चाहना दूसरी बात है और विद्या चाहना दूसरी बात है, बुद्धि चाहना दूसरी बात है, समाधि चाहना दूसरी बात है; लेकिन जो भगवान् के हृदय से लगकर उनसे एक हो जाना चाहते हैं, जो केवल भगवान् को ही चाहते हैं, जो केवल भगवत्–रस का आस्वादन करके भगवन्मय हो जाना चाहते हैं, उनके लिये भगवान् ने यह रास–लीला प्रकट की।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

काम भटका रहा है, लोभ भटका रहा है, यहाँ से वहाँ भटक रहे हैं। यदि इस रास के प्रसंग को आप अपने हृदय में धारण कर लें तो आपके हृदय का यह रोग शीघ्र से शीघ्र निवृत्त हो जायेगा। हृदय रोग होगा ही नहीं। यह हृदय रोग की चिकित्सा है, महौषधि है, यह रासलीला!

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक –16

जप शब्द का अर्थ है एक वस्तु के चिन्तन में अपने मन की भावना को जोड़ना। एक वस्तु में माने परमात्मा में अपने मन की भावना जुड़े- यह जप का उद्देश्य है।

अब रही बात नाम–जप की। नाम में मुख्य रूप से कर्ता की शक्ति नहीं मानी जाती। जो नाम ले रहा है, उसकी ताकत से नाम काम नहीं करता। नाम में तो जिसका नाम है, उस भगवान् के अनुग्रह की शक्ति काम करती है। तत्–पदार्थ की शक्ति से नाम में शक्ति आती है और कर्ता के अनुष्ठान से मन्त्र में शक्ति आती है। लेकिन यदि हम स्वयं कुछ करें नहीं और यह मान लें कि जब भगवान् की गरज होगी तब करेंगे तो इसका अर्थ क्या हुआ? यही हुआ कि हम किसी से कहें कि जब तुम्हारा मन हो, तब घर आ जाना तो यह बात दूसरी हो गयी और यदि हम किसी से कहें कि आप हमारे घर चलिये और जल्दी–से–जल्दी चलिये तो यह बात दूसरी हो गयी।

नाम में जब भगवान् का अनुग्रह उतर आता है तब वह नामी का दर्शन तुरन्त करा सकता है। भगवान् ने नाम को इतनी शक्ति दे रखी है कि वह नामी का अनुभव कराने में सर्वथा समर्थ है।

नाम को ब्रह्म बताया गया जैसे सर्वदेश में ब्रह्म है, वैसे ही नाम का जप सर्वदेश में हो सकता है। आप अशुद्ध से अशुद्ध देश में हों, स्थान में हों, वहाँ भी भगवान् का नाम ले सकते हैं, क्योंकि ब्रह्म तो वहाँ भी है।

इसी तरह कैसा भी काल हो, उत्तरायण हो, दक्षिणायन हो, व्यतिपात हो या सर्वार्थ-सिद्धियोग हो, वहाँ आप भगवान् का नाम ले सकते हैं। नाम में देश-काल का बन्धन नहीं है। जाति का भी बन्धन नाम उच्चारण में नहीं है कि किस जाति का आदमी करे, किस जाति का नहीं करे। वह नाम गुरु से लिया हुआ है कि नहीं, इसका बन्धन उसमें नहीं है। उसमें कोई संस्कार भी अपेक्षित नहीं है। लेकिन यदि कोई पवित्र देश में हो तो पवित्र काल में पवित्र व्यक्ति के द्वारा संस्कार करवाकर पवित्र नाम का उच्चारण करने पर उसमें उसका सद्गुण्य प्रकाशित होने का अधिक अवसर हो जाता है। इसलिये नाम की महिमा बहुत है, क्योंकि उसमें भगवान् की शक्ति है। परन्तु मन्त्र को विधिपूर्वक अपनी ओर से करना पड़ता है और उसमें जो विधि-विधान है उसका भी पालन करना पड़ता है। अन्यथा कभी मन्त्र के विपरीत बुरा काम हो जाये तो जागता हुआ मन्त्र भी सो सकता है। किन्तु नाम में तो जाग्रत होने की कोई बात ही नहीं है। जो जहाँ है, वह वहाँ नाम जप करता रहे, करता चले।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 17

तितिक्षा वह होती है, जो जीवन में अपने-आप दु:ख आजाने पर होती है-जैसे जन-मरण हो जाये, भवन-दहन हो जाये, धन-हरण हो जाये अथवा शरीर में कोई रोग हो जाये तो उस समय उसको बिना किसी प्रतिकार के, बिना चिन्ता-विलाप के सह लेना-यह तितिक्षा कहलाता है-

सहनं सर्वदु:खानाम् अप्रतिकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहितं स तितिक्षा निगद्यते।।

एक भक्त बीमार थे। हम लोग उन्हें देखने गये तो वे हाय-हाय बोल रहे थे। मैंने कहा कि भक्तजी, यदि कोई वेदान्ती हाय-हाय करता और मुझसे कहता कि यह मेरी जीभ हाय-हाय बोलती है, या मेरा मन हाय-हाय अनुभव करता है, मैं तो असंग, अद्वितीय ब्रह्म हूँ, मेरा इस हाय-हाय से कोई सम्बन्ध नहीं है। जो हाय-हाय करते हैं, उन्हें करने दो। ठीक है, लेकिन तुम तो भक्त हो, तुम्हें तो निरन्तर भगवदाकार-वृत्ति चाहिये। फिर तुम हाय-हाय क्यों बोलते हो? भक्तजी अच्छे सधे हुये भक्त थे। बोले कि आपने बहुत बढ़िया याद दिलायी। अब मैं हाय-हाय नहीं बोलूँगा।

कहने का मतलब यह कि जिसे दु:ख सहने का अभ्यास नहीं है, वह अपने जीवन में किसी प्रकार की सफलता-लाभ नहीं कर सकता, क्योंकि "**पीडोद्भवा सिद्धय:**"-जितनी भी सिद्धियाँ होती हैं, वे सब

पीड़ा में-से ही पैदा होती हैं। बहुत दिन हो गये, मैंने एक श्लोक लिखा था- जिसका भाव यह है-

हे दन्तधावन संविश्य विवरे निश्शंकमंगीकुरु
पीडातैर्विहितां मनाग् हतमना मा भूः सह स्वापदम्।
लोके शोधन-बोधन-प्रणयिनः के के न कां कां दशां
कष्टामापुरहो रहोगतमिदं पीडोद्भवाः सिद्धयः॥

हे दतुअन, तुम निश्शंक होकर मुँह में घुस जाओ। तुम जिन दाँतों की रक्षा करना चाहते हो, वे दाँत तुम्हें कुचले तो खूब प्रेम से कुचले जाओ। उसमें तुम्हें जितनी पीड़ा हो, उसे सहो और जरा भी व्याकुल मत होओ।

जो लोक में किसी का शोधन करना चाहते हैं कि हम कोई शोध करें और किसी को कोई बात समझाना चाहते हैं, उन्हें संसार में बहुत विपत्तियाँ, बहुत संकट सहने पड़ते हैं। ऐसे लोगों को कौन-कौन से संकट नहीं मिले हैं? कौन-कौनसी पीड़ा नहीं सहनी पड़ी है? इसलिये यह रहस्य जान लो कि जितनी भी सिद्धियाँ जीवन में आती हैं, वे सब पीड़ा सहने से ही आती है। लौकिक, वैज्ञानिक अनुसन्धान भी बिना कष्ट उठाये नहीं हो सकते। इसलिये तितिक्षा जीवन का सर्वस्व है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 18

भजन का अर्थ है—प्रीति-पूर्वक सेवा। प्रीति होती है मनमें, तो बाहर चाहे हाथ से पूजा करें, चाहे पाँव से प्रदक्षिणा करें, चाहे जीभ से स्तुति करें, चाहे साष्टाङ्ग दण्डवत् करें और चाहे मनमें ध्यान करें। प्रीति माने तृप्ति। यह जो हम जगह-जगह से रसास्वादन लेते हैं, तृप्ति लेते हैं, उसकी जगह पर हमारी प्रीति, हमारी तृप्ति भगवान् के नाम, धाम, रूप, भगवान् की लीला, भगवान् की सेवा, भगवान् के दर्शन में होनी चाहिए। भगवान् के नाम में जो रसास्वादन है-उसको भजन कहते हैं। श्रीवल्लभाचार्य जी महाराज ने तो '**भजनानन्द**' को विषयानन्द, उपासनानन्द, ज्ञानानन्द और ब्रह्मानन्द, सबसे विलक्षण माना है।

संस्कृत की '**भज**' धातु बड़ी विलक्षण है। भजन माता का भी होता है, पिता का भी होता है, पति का भी होता है, पुत्र का भी होता है, देश का भी होता है, जाति का भी होता है। जहाँ हम प्रीति-विशिष्ट सेवा करेंगे, प्रेम से तृप्त होते हुए, रस लेते हुए-केवल नेगचार के लिए नहीं, केवल हुकुम मानने के लिए नहीं-जहाँ हम अपने रस से घोल-घोल करके किसी पदार्थ का सेवन करेंगे-उसका नाम भजन हो जाता है। और, इस भजनानन्द के विषय में तो ऐसा बोलते हैं कि ब्रह्मानन्द में केवल शान्ति है, रसास्वादन नहीं है, विषयानन्द में पराधीनता है और योगानन्द में अभ्यास का कष्ट है। लेकिन, यह जो भजनानन्द है-इसमें न शान्ति है, न विधि है और न ही अभ्यास है।

इसमें तो अपने प्यारे के लिए रोना भी भजन है, दूर होने पर उसका जो चिन्तन होता है–वह भी भजन है, पास रहने पर जो स्पर्श होता है–वह भी भजन है। वह जो चिढ़ाता है, कुढ़ाता है, काटता है, पीटता है–वह भी भजन है और जब प्यार, दुलार करता है, तब भी भजन है। उसको सबमें मजा आता है, सबमें स्वाद आता है। जिसके हृदय में प्रीति का भाव आ गया, उसको एक घास को प्यार करते समय भी भजनानन्द होगा। मिट्टी को प्यार करते ही भजनानन्द का अनुभव होगा और वह जिसको छूऐगा, उसमें भी भजन का आनन्द भरेगा, जिसको देखेगा उसको भी आनन्दमय कर देगा। जिसको सूँघेगा वहाँ भी उसकी साँस में से आनन्द–ही–आनन्द फैलेगा।

उसकी वाणी में से आनन्द विस्तीर्ण होगा। उसके शरीर में से जो तन्मात्राएँ छूटेंगी, वे भी परमानन्दमय होंगी। यह भजन केवल एक व्यक्ति को नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि को तृप्तिमय, रसमय, परमानन्दमय बनाने के लिए है। यह भजन जिसके जीवन में आ जाता है, वह कृतार्थ हो जाता है। वहाँ दु:ख लेश नहीं रहता है, दु:ख भी वहाँ सुख रूप हो जाता है, परमानन्द हो जाता है: ऐसा यह भजन है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 19

आदमी अभिमान से ही गलत काम करता है। उस समय उसको भगवान् भूल जाते हैं और **'मैं'** आ जाता है। मनुष्य के मन में जब यह तीव्र वासना हो जाती है कि हमको यह मिले, वह मिले, तब वह चोरी-चमारी या कोई बुरा काम करने लगता है। जब स्त्री के लिए वासना होगी, तब काम-वश व्यभिचार होने लगेगा। जब दुश्मन को मारने की इच्छा होगी तब क्रोध-वश हिंसा होने लगेगी। जब अमुक चीज हमको मिल जाये-यह कामना होगी तब लोभ होगा और लोभ-वश चोरी-बेईमानी होने लगेगी। माने बुरा काम तभी होता है जब अपनी वासना प्रबल हो जाती है, अभिमान बढ़ जाता है और उसी समय मनुष्य गलत रास्ते पर चला जाता है। लेकिन भगवान् की कृपा कि वहाँ भी वे मनुष्य को एक-न-एक दिन ऐसा चाँटा मारते हैं कि वह फिर वहाँ से लौट आये।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 20

आइये, देखें कि बोध और भावना में क्या अन्तर है। बोध-जो है वह जैसी वस्तु होती है, उसके अनुरूप होता है। पत्थर को पत्थर समझना बोध होगा। आत्मा को आत्मा समझना बोध होगा। माने, जो वस्तु जैसी है, जो है—उसको वैसी ही जान लेने का नाम बोध है। और अब देखो— एक पत्थर की मूर्ति है, मुसलमान की दृष्टि में वह एक बुत है, ईसाई की दृष्टि में उसकी बहुत कीमत नहीं है, लेकिन, एक सनातन-धर्मी हिन्दू उसी मूर्ति को अपने सामने रख करके अपने हृदय को भगवद्भाव से परिपूर्ण करता है। तो यह क्या है? यह है— भावना। भावना होती है— करने वाले की ओर से और बोध होता है— वस्तु की ओर से।

वस्तुतन्त्रो भवेत् बोधः कर्तृतन्त्रं उपासनम्।

भावना कर्ता के अधीन होती है। वह यह भावना करे कि यह जो शालिग्राम हैं, साक्षात् विष्णु हैं— बहुत बढ़िया। और न करे, उसको पत्थर समझकर छोड़ दे, उसको गोली समझकर कि कहीं कोई इसपर फिसल न जाये, गिर न जाये-तोड़ दे— तो भी बहुत बढ़िया। माने कर्ता के अधीन जो वस्तु होती है, उसको करने में, न करने में, बदलने में कर्ता की स्वाधीनता होती है— भावना करे, भावना न करे, भावना बदल दे। जिसके बारे में अच्छी भावना है, उसके बारे में बुरी भावना हो जाये, बुरी भावना जिसके बारे में है, उसके बारे में अच्छी भावना हो जाये। भावना—जो

जीव की बनायी हुई होती है—बदलती रहती है, छूटती रहती है, नयी बनती रहती है। लेकिन बोध जो होता है वस्तु का, वह जो वस्तु जैसी है-

यद् रूपेण यन्निश्चितम् तद्रूपं न व्यभिचरति।

(तै०उप० २.१ शांकरभाष्य)

जिस रूप में उसका निश्चय हो गया कि यह स्वरूप ऐसा है, उसमें कभी भी परिवर्तन नहीं हो सकता। तो बोध हुआ—वस्तु के स्वरूप के अनुरूप ज्ञान और भावना हुई—अपने हृदय का उत्तम-से-उत्तम निर्माण। होता है सामने पत्थर और हम भावना करते हैं कि- भगवान् हैं। पत्थर-पत्थर ही रहेगा, लेकिन हमारा हृदय भगवन्मय, भगवदाकार हो जायेगा। तो बोध और भावना में क्या अन्तर हुआ? बोध आता है वस्तु की ओर से—मेयाधीन है और भावना आती है कर्ता की ओर से—प्रमाताधीन है। भावना होती है, बदलती है, छूटती है, पकड़ी जाती है और बोध वह होता है, जो न बदलता है, न छूटता है और न पकड़ा जाता है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 21

देखो, किसी भी जीवन की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये–चाहे वह व्यक्तिगत जीवन हो, पारिवारिक जीवन हो, सामाजिक जीवन हो, जातीय जीवन हो, साम्प्रदायिक जीवन हो, प्रान्तीय जीवन हो या राष्ट्रीय जीवन हो। किसी भी जीवन का जितना उचित अंश है और कर्तव्य है, उसका पालन करना चाहिये। भजन केवल माला फेरने से नहीं होता या केवल मन्दिर में बैठने से नहीं होता या केवल कोई वेशभूषा धारण करने से नहीं होता। कपड़े रंग लेना, चन्दन लगा लेना और बाल रख लेना–इसका नाम भजन नहीं होता है। आप जो कर रहे हैं, उसका उद्देश्य क्या है–यह बात भजन में देखने की होती है। आपके कर्म का चाहे जो रूप हो, जैसे आप घास छील रहे हैं– यदि उसका यह उद्देश्य है कि इस मार्ग से लोग निकलेंगे तो उनके पाँव में काँटे नहीं लगेंगे या छीली हुई घास को खाकर पशु–पक्षी जिन्दा रहेंगे तो आपका उद्देश्य उत्तम है। इसी तरह आपका पारिवारिक कर्म हो, चाहे सामाजिक कर्म हो, वह सब उद्देश्य पवित्र होने से उत्तम हो जाता है। कर्म की पवित्रता, उत्तमता या औचित्य का बोध उसकी रूप–रेखा से नहीं होता, बल्कि वह किस उद्देश्य से किया जा रहा है, इस पर आप विचार करेंगे तब उसकी उत्तमता का पता चलेगा।

यदि कोई गायत्री मन्त्र का जप धन–प्राप्ति के लिये करेगा तो धन मिलेगा, परन्तु उसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं होगा। लेकिन यदि कोई गायत्री मन्त्र का जप भगवान् की प्रसन्नता के लिये करेगा तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा। इसलिये बाहरी क्रिया का उतना महत्त्व नहीं है, जितना अपने उद्देश्य का महत्त्व है। इसलिये उद्देश्य अपना पवित्र होना चाहिये। यदि उद्देश्य पवित्र होता है तो अपना कर्म अपने आप ही पवित्र हो जाता है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 22

सच्ची पूजा कब?

जब हम भगवान् की पूजा करके यह दिखाना चाहते हैं कि हम बड़े भारी पुजारी हैं, तब भगवान् भी 'अहम्' की पूजा की एक सामग्री बन जाते हैं। मनुस्मृति के बारहवें अध्याय में एक श्लोक है, जिसमें भगवान् की पूजा का वर्णन है–

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नत्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति॥ (12.91)

सब में परमात्मा है और परमात्मा में सब है, पूजा में यह ध्यान रहना चाहिए। यदि पूजा एक के सत्कार और दूसरे के तिरस्कार या एक के तिरस्कार और दूसरे के सत्कार का साधन बन गयी तो वह पूजा सच्ची नहीं होती। सच्ची पूजा वह है जो सब में परमात्मा के देखता है। '**कटुक वचन मत बोल रे, तोहे पीउ मिलेंगे। घूँघट को पट खोल रे, तोहे पीउ मिलेंगे।**' अपनी आँखों पर जो पर्दा पड़ा है उसको हटा दो और सबके हृदय में परमात्मा का दर्शन करो। घड़े में भी माटी है, सकोरे में भी माटी है, खपरैल में भी माटी है। तुम उस माटी को देखो, नाम-रूप पर अपनी दृष्टि मत जमाओ। इसके बाद वही पूजा है–

समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।

पूजा में अपने अहंकार की बलि देनी है, आत्म-यजन करना है। और, जो अपने अहं की बलि नहीं दे पाता, वह अपने अहं में परमात्मा को

ज्यादा देखता है और दूसरों में कम अथवा दूसरों में देखना ही बन्द हो जाता है। इसलिए अपने अहं की बलि होनी ही चाहिए। इसको यों ही समझिये—भगवान् के प्रति लोक-परलोक अर्पित करके भी बलि अधूरे रह गये!

तो हमलोग जितना देते-लेते हैं, उसमें हम देने-लेने वाले बने ही रह जाते हैं। पूजा करके पुजारी बन जाते हैं, दान करके दाता बन जाते हैं, सत्कर्म करके कर्ता बन जाते हैं। पर, यह पूजा पूरी तभी होती है, जब हमारे अहं का बलिदान हो जाता है। यह अहं ही भैंसासुर है, भैंसा है, इसका बलिदान हुए बिना पूजा पूरी नहीं होती है। और इस अहं के बलिदान का प्रकार यह है कि इसमें—माने अहं अ से लेकर ह तक, यानी हमारी वर्णमाला का आदि अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'ह' है-सब-के-सब इसमें भरे हैं, तो इन वर्णों से जितने शब्द बनते हैं और उन शब्दों से जितने वाक्य बनते हैं और उनसे जिन अर्थों का बोध होता है, वह सब-का-सब जब परमात्मा के प्रति अर्पित हो जाता है, तब पूजा पूरी हो जाती है। मैंने पहले किसी का एक गीत पढ़ा था। शायद सुभद्रा कुमारी चौहान का-'**पूजा और पुजापा प्रभुवर, इसी पुजारिन को समझो**'—तो जब तक यह पुजारिन अर्पित नहीं होगी, पुजारी अर्पित नहीं होगा, तब तक पूजा पूर्ण नहीं होगी। पूजा पूर्ण करनी है तो स्वयं अर्पित हो जाओ।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 23

नारायण, शुरुआत होनी चाहिये भगवान् के नाम स्मरण से, भगवान् की कृपा–अनुभव से और भगवान् की सेवा पूजा से। दूसरों के बारे में ज्यादा नहीं सोचना चाहिये कि इनका कल्याण कैसे होगा? अपना ही कल्याण करने के लिये सदा सोचना चाहिये। दूसरों का कल्याण करना तो एक उपकार का काम है। परन्तु, पहले अपना उपकार करो, अपना हाथ साफ करो। जब अपना हाथ साफ होगा तब दूसरे का उपकार अपने आप ही होने लगेगा। तब हम दूसरे को छू देंगे तो वह भी साफ हो जायेगा। लेकिन हमारा गन्दा हाथ होगा और उससे हम दूसरे को छूयेंगे तो वह भी गन्दा हो जायेगा। इसलिये अपना मन साफ करने की कोशिश करनी चाहिये। यह भगवान् का नाम लेते–लेते, श्रवण करते–करते होगा। लेकिन यदि तुम्हारे मन में दिखावा आ गया और तुम यह दिखाने लग गये कि लोग हमें बड़ा भारी भक्त समझें; तो फिर चाहे जितना नाचो, जितना गाओ, जितना बजाओ, लोग देख–देखकर वाह–वाह कर देंगे, तुम्हारी तारीफ कर देंगे और तुम उसमें सटकर रह जाओगे। इसलिये अपने दिल में कोई चीज ऐसी रखनी चाहिये, जो हमारे और भगवान् के सिवाय अन्य किसी को मालूम न पड़े।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 24

धर्म कोई परोक्ष वस्तु नहीं है, प्रत्यक्ष है—**"धारणात् धर्मः"** धर्म-सूत्रों में ऐसा वर्णन आया है कि धर्म प्रत्यक्ष वस्तु है, इससे एक अपूर्व उत्पन्न होकर अन्तःकरण में जमता है और वह समय पर अपना फल देता है।

तो धर्म इधर अर्थ और काम को नियंत्रित करता है और उधर अन्तःकरण शुद्ध करके मोक्ष का मार्ग खोल देता है। इसलिये धर्म को कुछ ऐसा न समझें कि वह होम करने से ही होता है या यज्ञशाला में ही होता है या तीर्थयात्रा से ही होता है या मौन रहने से ही होता है। ठीक है उनसे भी धर्म होता है-इसमें कोई शंका नहीं; परन्तु धर्म को आप किसी कर्म में, किसी स्थान में कैद मत कीजिये। धर्म को अपने साथ रखिये। दुकार में भी, ऑफिस में भी, फैक्टरी में भी, रेलगाड़ी में भी, मोटर में भी, पैदल चलते समय भी, सब जगह धर्म है—इसलिये धर्म को अपने साथ रखिये। वही एक ऐसा पहरेदार है, जो आपको बुरे काम से हटा सकता है।

नारायण, धर्म को जो अत्यन्त संकीर्ण रूप दे दिया गया कि जो अमुक आचार्य ने कहा, वही धर्म है; जो अमुक पैगम्बर ने कहा वही धर्म है और जो अमुक किताब में लिखा है, वही धर्म है—यह ठीक नहीं है। धर्म का अन्तःकरण में प्रत्यक्ष या अपरोक्ष अनुभव होता है, उसको छोड़कर जब हम बाहर से धर्म लेने जाते हैं तो वह धीरे-धीरे कमजोर होता जाता है और अर्थ तथा काम पर नियंत्रण करने की उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। इसलिये धर्म को अपने हृदय में हर समय देखना चाहिये और कोई भी काम करना हो, भोग करना हो, व्यवहार करना हो तो उसे धर्म के तराजू पर तौल लेना चाहिये।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 25

पहली बात यह है कि भक्ति प्राप्त करने के लिये भक्तों का संग करना चाहिये। आप देख लीजिये कि आप किन लोगों में बैठते हैं, किन लोगों से मेल करते हैं, किनको अपने से भला मानते हैं और किनके पीछे चलते हैं। इन सब बातों पर विचार करके आप जैसे बनना चाहते हैं, यदि वैसे लोगों का संग करेंगे तो आपकी उन्नति होगी। जैसे एक दीप जल रहा हो और सौ दीये लाकर उसके साथ जोड़ दिये तो सब–के–सब जल जाते हैं, ऐसे ही एक भी सच्चा भक्त यदि आपके जीवन में मिल जाये तो आपके हृदय में भक्ति की लौ प्रज्ज्वलित हो सकती है।

इसलिये भक्ति प्राप्त करने के लिये सन्तों का संग और भगवान् के स्वरूप, स्वभाव का चिन्तन करना आवश्यक है। सोचिये तो सही कि भगवान् कितने बड़े दयालु–कृपालु हैं कि गीध को भी अपने कंधेपर बिठा लेते हैं, मारीच का भी कल्याण कर देते हैं और पूतना का भी मंगल कर देते हैं। इसलिये आप अपने बारे में निराश, उदास मत हों। भगवान् के गुणों का चिन्तन कीजिये। भगवान् के रूप, उनके गुण, उनकी सुशीलता, उनकी मृदुता और उनकी तरह–तरह की लीलाओं का स्मरण कीजिये। जो भगवान् कुब्जा को स्वीकार कर सकता है, वह क्या आपको स्वीकार नहीं करेगा?

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 26

असल में जिस निष्कामता की बात पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों में पढ़ने को मिलती है, वह आसान नहीं है, अनायास सिद्ध होने वाली नहीं है। जब तक अपने में बाहर की वस्तुओं से सुखी होने की इच्छा है और अपने में भोक्तापन की भ्रान्ति है, तब तक दूसरों को हम अपना भोग्य बनाये बिना छोड़ नहीं सकते। उसमें भावना अवश्य रहेगी। कोई भी भोक्ता निष्काम नहीं हो सकता। जो किसी वस्तु से, किसी व्यक्ति से, किसी के व्यक्तित्व से, किसी के मिलने से, किसी के बिछुड़ने से, खाने से, पीने से, भोगने से, अपने शरीर के रहन-सहन से, अपनी बात से और अपनी भावना से रस लेता है, वह पूर्ण निष्काम नहीं है। इसलिये निष्काम होने का जो संकल्प है, उसमें प्रभु से प्रार्थना है कि हे प्रभु, हमारी जो स्वार्थ-वृत्ति है, इसको कम करो। अपनी ओर से जो प्रतिज्ञा है, संकल्प है, वह दृढ़ बनाया जाये। इसमें सबसे बढ़िया बात यह होती है कि जिनकी निष्कामता पर आपकी श्रद्धा हो कि यह व्यक्ति निष्काम है, उसका संग किया जाये। बेईमानी करके धन कमाना, भोग-राग में अपनी प्रवृत्ति को उच्छृंखल बनाये रखना और यह कहना कि हमतो सबकुछ निष्काम-भाव से करते हैं— इसका नाम निष्कामता नहीं है। यह तो निष्कामता की हँसी उड़ाना है।

इसलिए यदि आप निष्कामता चाहते हैं तो यह संकल्प कीजिये कि मैं कामना के वश होकर कोई कर्म नहीं करुँगा, सबकुछ कर्त्तव्य-पालन

के रूप में करुँगा या भगवत् प्रसाद के लिये करुँगा या अंत:करण–शुद्धि के लिये करुँगा या सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिये करुँगा। इस प्रकार अपनी कामना को मिटाकर अभ्यास किया जा सकता है। जो भी कामना हो, उसे भगवान् के चरणों में अर्पित करते चलिये और अपने भोग के लिये जहाँ तक हो सके कम कामना कीजिये। धीरे–धीरे आपका हृदय निष्काम हो जायेगा और आपका संकल्प मजबूत हो जायेगा।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 27

महाकवि श्रीहर्ष ने अपने नैषध नामक ग्रन्थ में कहा है–

वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्।

यदि अद्‌भुत गुणवाली वस्तुओं को देखकर भी हम मौन रह जाते हैं तो भगवान् ने जो जिह्वा बनायी है, वह व्यर्थ हो गयी और केवल निन्दा करने के लिये, गाली देने के लिये रह गयी। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण सबकी प्रशंसा करते हैं तो आत्मबुद्धि से ही करते हैं। उनकी दृष्टि में योगी भी उनका आत्मा है, भक्त भी उनका आत्मा है, कर्मयोगी भी उनका आत्मा है और ज्ञानी को तो वे स्पष्ट रूप से कहते ही हैं कि यह मेरा आत्मा है।

होता यह है कि भक्त लोग भगवान् के वचन पर जरा कम ध्यान देते हैं और वेदान्ती लोग भगवान् के रूप पर कम ध्यान देते हैं। इसका परिणाम क्या होता है? वेदान्ती लोग भगवान् के रूप पर ध्यान नहीं देते हैं तो उनको अपने मन की आसक्ति सफल करने का कोई साधन नहीं मिलता और भक्त लोग भगवान् के वचन पर ध्यान नहीं देते तो उन्हें सत्य के ज्ञान और परमार्थ में रुचि कम हो जाती है। इसलिये भगवान् की आज्ञा भी माननी चाहिये और भगवान् के रूप सौन्दर्य की झाँकी भी करनी चाहिये।

यह जो '**तत्त्वतः–तत्त्वतः**' का तकिया कलाम है वह तत्त्वज्ञान को बहुत दुर्लभ बताने के लिये ही कहीं–कहीं आता है।

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततातपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।। (गीता 7.3)

लोग भगवान् को आकारत: तो जानते हैं, कर्मत: तो जानते हैं, अवतारत: तो जानते हैं, पर तत्त्वत: कितने जानते हैं? वह तत्त्व— जिसमें-से सब आकार निकलते हैं, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड और उसमें रहने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश निकलते हैं—कितनों के ध्यान में आता है? कितने जानते हैं कि जगत् क्या है? जीव क्या है? ईश्वर क्या है जो सबमें एकरस है, अनेक आभूषण बनने पर भी एक सोना है, अनेक बर्तन बनने पर भी एक मिट्टी है, अनेक औजार बनने पर भी एक लोहा है, वह तत्त्व कौन-सा है? जो मत्स्य में भी है, कच्छप में भी है, वराह में भी है, नृसिंह में भी है, वामन में भी है, परशुराम में भी है, श्रीराम में भी है, श्रीकृष्ण में भी है, बुद्ध में भी है और कल्कि में भी है, वह एक तत्त्व कौन-सा है? वह आस्तिक है कि नास्तिक है कि साकार है कि निराकार है कि व्याप्य है कि व्यापक है? उसको समझने के लिये तत्त्व का अनुसन्धान करना पड़ेगा। इसीलिये भगवान् बार-बार '**तत्त्वत:**' का प्रयोग करते हैं।

भक्त्या मामभिजानाति यावन्यश्चास्मि तत्त्वतः।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। (गीता 18.55)

तो जो तत्त्व है, यह जो सम्पूर्ण आकारों का, विकारों का, संस्कारों का, प्रकारों का एक उद्गम स्थान है, एक मुम्बा है और वह बिना बदले, बिना किसी परिवर्तन के सर्वरूप में दिखायी पड़ता है, वह अभिन्ननिमित्तो-पादान कारण है। लेकिन उस रूप में भगवान् को जानने की इच्छा बहुत कम होती है। जिस दिन आप तत्त्व को समझने का प्रयास करेंगे, आपको उसकी जिज्ञासा होगी, उस दिन आप स्वयं संसार के चक्कर से ऊपर उठ जायेंगे।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 28

यह सब को ब्रह्म, सब को ब्रह्म बोल देना जुदा है और विवेक करके समझना—यह बात जुदा है। आप बिलकुल निश्चित समझो कि सब कुछ परब्रह्म परमात्मा है— यह ज्ञान हुए बिना, यह दृश्य-मूर्ति ब्रह्म है, परमात्मा है-यह बात समझ में नहीं आवेगी। भक्ति-दर्शन दृश्य दर्शन है और सांख्य-दर्शन द्रष्टरि दर्शन है। और, अद्वैत-वेदान्त क्या है? नारायण, द्रष्टा भी वही, दृश्य भी वही। जो लोग ऐसा समझते हैं कि अद्वैत-वेदान्त किसी कर्म का विरोधी है, किसी उपसना का विरोधी है, किसी योगाभ्यास का विरोधी है, गलत समझते हैं। नारायण, वह तो सब का समन्वय करने वाला है। सबको अपने-अपने स्थान पर बैठाने वाला है। पैसा कमाने को तो वेदान्त मना नहीं करता, संसार के व्यवहार को तो वेदान्त मना नहीं करता। आँख से रूप दिखे, नाक से गन्ध आवे, जीभ से स्वाद आवे—इससे तो वेदान्त मना ही नहीं करता। और, उपासना-सिद्ध भगवद्-अनुग्रह से प्राप्त जो अनुभूति है—उसको वेदान्त भला कैसे काट देगा?

◆❖◆❖◆❖◆❖◆

आत्म-साक्षात्कार तो सब को ही प्राप्त है, परन्तु लोग दूसरों के साक्षात्कार में इतना संलग्न हो गये हैं कि उन्हें आत्म-साक्षात्कार का ध्यान ही नहीं है। उनको तो जड़ता का साक्षात्कार चाहिये, दुःख का साक्षात्कार चाहिये और यह उनको प्राप्त है। जब आदमी जानबूझकर

दूसरों का साक्षात्कार कर रहा है तो उसको अपना साक्षात्कार कैसे होगा ? इस संसार में लाखों चीजें लोगों के सामने खड़ी हैं और कहती हैं कि हमें देखो, हमें देखो। बाजारों के लोगों ने शोरूम बना रखे हैं और कहते हैं कि हमारे पास यह है, वह है। यदि कोई इन्हीं को देखने में लगा रहे तो उसको आत्म-साक्षात्कार कैसे हो सकता है? इसलिए आप आत्म-साक्षात्कार चाहते हैं तो दूसरों को आत्मा-साक्षात्कार है या नहीं-इसके चक्कर में बिलकुल न पड़िये और स्वयं आत्म-साक्षात्कार करने के लिये प्रयास कीजिये। हम और हमारे भाई ऐसे हैं, जो आपकी मदद करेंगे।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 29

कोई भी भगवान् से विमुख होकर सुखी नहीं हो सकता। जीव जब भगवान् के यहाँ से चलता है, तब वे इसकी छट्ठी में एक चुटकी दुःख का चूर्ण डाल देते हैं कि जाओ बेटा घूमो। लेकिन जब तक मेरे पास नहीं आओगे, तब तक तुम्हारा दुःख मिटेगा नहीं, तुम्हारी अशान्ति बनी रहेगी।

इसलिये जो भगवान् को भूलकर, उनसे विमुख होकर दुनिया में भटक रहा है, उसके दिल में शान्ति नहीं है, सुख नहीं है। मैं बड़े-बड़े राजाओं-महाराजाओं को जानता हूँ जो खुद अपने मुँह से बताते हैं कि विलायत में हमारे पास अपार धन रखा हुआ है; लेकिन इसके साथ-साथ वे लोग यह भी बताते हैं कि हमको भाई से यह दुःख है, बहन हमारा सबकुछ उठाकर ले गयी, पत्नी हमारे साथ यह बेवफाई करती है और बेटा हमारी बात नहीं मानता। उनकी सुनो तो लगता है कि उनके पास दुःख-ही-दुःख है। उनके मन में कहीं एक क्षण के लिये भी शान्ति नहीं है। उनके पास धन बहुत है, नौकर-चाकर बहुत हैं, स्त्री बहुत सुन्दर है, सबकुछ है, परन्तु चित्त में शान्ति नहीं है। होगी कैसे? भगवान् के भजन के बिना मन में शान्ति नहीं आ सकती। इसलिये हम दुनिया में भटकते हैं। तो बढ़िया यही है कि भगवान् का नाम लेना शुरु करें और सुनें। फिर धीरे-धीरे भगवान् कैसे हैं, क्या है-इसको समझें। इसके बाद भगवान् से प्रीति होगी, भगवान् मिलेंगे और उनके बारे में ज्ञान हो जायेगा। फिर हम उनको अपने सामने रखेंगे और उनसे एक हो जायेंगे।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 30

गीता संदेश

आप सुख चाहते हैं, दु:ख नहीं। पर, जब तक आप सुख चाहते रहेंगे, तब तक आपके पास दु:ख आता रहेगा। लड़िये आप! कब तक लड़ेंगे? अत: आओ, श्रीकृष्ण को अपने हृदय में बैठा लो। हैं ही आपके हृदय में और पहले से ही हैं और आकाश का पर्दा फाड़कर हैं; दिशाओं की सीमा तोड़कर हैं और काल-भूत, भविष्य, वर्तमान को मिटाकर हैं। आपके हृदय में भगवान् हैं और जहाँ भगवान् हैं, वहाँ अमंगल की कोई शंका नहीं है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

योग माने उपाय, साधन। हम जो भी उपाय कर रहे हैं, साधन कर रहे हैं या कर्म कर रहे हैं या प्रयत्न कर रहे हैं-उसके प्रेरक, प्रवर्त्तक, निर्वाहक और फलदाता भगवान् हैं, योगेश्वर हैं। योग माने उपाय और ईश्वर माने स्वामी। प्रेरणा देने वाले, निर्वाह करने वाले, फल देने वाले स्वामी। प्रेरणा भी वही देते हैं, साधन का निर्वाह भी वही करते हैं और फल भी वही देते हैं। और-'**यत्र पार्थो धनुर्धरः**' जहाँ यह जीवात्मा ज्ञान- विज्ञान का धनुष लेकर खड़ा है, जहाँ जीव का उत्साहपूर्ण अभियान है और ईश्वर की सहायता है वहाँ—'**तत्र श्रीर्विजयोभूतिः**' लक्ष्मी का निवास वहाँ है, विजय वहाँ है, वैभव वहाँ है और शाश्वत नीति वहाँ है। बस, वहाँ सम्पूर्ण मंगल, सम्पूर्ण सुख और सम्पूर्ण शान्ति का निवास है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 31

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति। (गीता 5.29)

भगवान् तो सबके ऊपर बड़ी कृपा करते हैं। हमलोग ही अपने अन्त:करण के दोषों के कारण उनकी कृपा का अनुभव नहीं कर पाते हैं। भगवान् की कृपा होने पर भी हमारे द्वारा बुरे काम कैसे होते हैं, इसे समझने के लिये इस बिजली को देखो। यह सब जगह काम कर रही है। इससे पंखे चल रहे हैं, हवा दे रहे हैं, बल्ब रोशनी दे रहे हैं और लाउडस्पीकर आवाज उठा रहे हैं। इसी तरह गीजर होते हैं और भी दूसरे यन्त्र होते हैं, जो इससे अपना-अपना काम करते हैं। बिजली सबको सत्ता देती है, सबको शक्ति देती है, सबका संचालन करती है। लेकिन जब मशीन में कोई खराबी होती है, तब वहाँ आग लग जाती है या खट-खट की आवाज आने लगती है और काम अधूरा रुक जाता है। पावर-हाऊस में भी जब गड़बड़ी होती है तब वहाँ जो व्यापक विद्युत-सत्त्व है, उसका कोई दोष नहीं होता, दोष वहाँ के यन्त्र का ही होता है।

इसलिये हमारा जो अन्त:करण है, वह अपनी-अपनी वासना के अनुसार चलता है। एक व्यक्ति काम करना पसन्द करता है। दूसरा व्यक्ति कमाना पसन्द करता है, तीसरा व्यक्ति तलवार चलाना पसन्द करता है और चौथा व्यक्ति वेद-पाठ करना पसन्द करता है। इस तरह अपने-अपने हृदय की जो वासनायें हैं, उनके अनुसार उन-उन यन्त्रों से काम होता रहता है और ईश्वर सत्ता-सामान्य के रूप में सबके हृदय में

रहकर सबको शक्ति देता है। जब कोई चाहे कि हमारा हृदय-परिवर्तन हो जाये तब भगवान् बदल देते हैं। यदि आप चाहें कि हमारे जीवन में कोई कुकर्म न आवे तो भगवान् आपको अवश्य ऐसी शक्ति देंगे कि आपके जीवन में कोई कुकर्म, कोई कुभावना, कोई कुविचार न आने पावे। इसके लिये आप प्रतिदिन प्रातःकाल नींद खुलते ही भगवान् से प्रार्थना कर लीजिये कि हे प्रभु, आज से मैं कोई बुरा काम न करूँ और सोते समय भी याद कर लीजिये कि आज मेरे मन में कोई बुरे विचार तो नहीं आये; यदि आये हों तो भगवान् से क्षमा माँगिये और कल कोई कुकर्म न करने के लिये भगवान् के चरणों का स्पर्श करके प्रतिज्ञा कीजिये कि कल कोई कुकर्म न हों। दिन में काम करते समय भी बीच-बीच में यह देख लीजिये कि आपसे दूसरों को दुःख पहुँचाने वाला, जीवन को नीचे गिराने वाला कोई काम तो नहीं हो रहा है। फिर बीच-बीच में यह जरूर देखते रहना चाहिये और भगवान् से प्रार्थना करते रहना चाहिये कि जीवन में जो बुरे कर्म आते हैं वे छूट जायें। आपके मन में यह दृढ़ संकल्प होगा, दृढ़ भावना होगी तो इन बुरे विचारों का आना बन्द हो जायेगा।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 32

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करने के लिये आप कुछ बातों पर ध्यान दीजिये–

पहली बात यह है कि बुद्धिस्थ अन्तर्यामी प्रभु की शरण ग्रहण करनी चाहिये। वे लोग दरिद्र हैं जो संसारी चीजों के लिये इधर-उधर व्याकुल फिरते हैं।

दूसरी बात यह है कि योगबुद्धि प्राप्त हो जाये तो पाप-पुण्य यहीं छूट जाते हैं।

तीसरी बात यह है कि सुख-दु:ख नहीं रह जाते हैं।

चौथी बात यह है कि विक्षेप-समाधि का भेद मिट जाता है।

◆ ❖ ◆ ❖ ◆ ❖ ◆ ❖ ◆

मन में कामना रखकर काम न करो। हाँ, प्रयोजन अवश्य होना चाहिये। प्रयोजन और कामना—इन दोनों में थोड़ा अन्तर है। जब हम चाहते हैं कि इससे भगवान् प्रसन्न हों तो यह प्रयोजन है, कामना नहीं है। जब हम चाहते हैं कि इससे हमें सत्य का साक्षात्कार हो तो यह प्रयोजन है, कामना नहीं है। और, जब हम चाहते हैं कि हमारे हृदय में सत्य साक्षात्कार की तीव्र जिज्ञासा उदय हो तो यह प्रयोजन है, कामना नहीं है। इसे आप फिर से सुन लीजिये। कर्त्तव्य-पालन के लिये कर्म करना, अन्त:करण की शुद्धि के लिये कर्म करना, भगवान् की प्रसन्नता के लिये कर्म करना, सत्य की जिज्ञासा के लिये कर्म करना और सत्य के साक्षात्कार

के लिये कर्म करना—ये पाँचों प्रयोजन हैं, कामना नहीं है, यदि इन पाँचों प्रयोजनों को सामने रखकर आप अपने कर्म करते हैं तो उसका नाम निष्काम होता है। असली निष्कामता तब तक नहीं आ सकती, जब तक अपने में भोक्तापने का भ्रम है। जब तक भोक्तापने का भ्रम होगा, तब तक भोग्य की कामना होगी और भोक्तापने का भ्रम तब तक रहेगा जब तक कर्तापन का भ्रम रहेगा। इसलिये कर्तापन और भोक्तापने का भ्रम टूट जाना चाहिये।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 33

पहले धर्मात्मा बनो, फिर भगवान् की भक्ति करो– यह सिद्धान्त दूसरा है और धर्मात्माओं का है। भक्तों का यह कहना है कि पहले भक्त बनोगे तो धर्म स्वयं तुम्हारी सेवा में आ जायेगा। इसलिये पहले भक्ति करना शुरु करो। कोई कहते हैं कि पहले ज्ञान हो जाये, तब भक्ति करेंगे– वह भी दूसरा मार्ग है। किन्तु कोई कहते हैं कि नहीं, पहले भक्ति करो, तब ज्ञान अपने–आप ही आ जायेगा। नारायण, हम पहले किसी की सेवा करने लगें तो उसके बारे में सब जानकारी हो जायेगी कि वह क्या खाता है, क्या पीता है, कैसे सोता है, और कैसे रहता है। इसी तरह से उसके बारे में पहले जानकारी प्राप्त करें और फिर उसकी सेवा करें तो ये दोनों बातें ठीक हैं।

इस सम्बन्ध में हमारा यह मानना है कि पहले आप भगवान् का नाम लीजिये भगवान् का दर्शन कीजिये, भगवान् के लिये चार कदम चलिये और चार शब्द बोलिये। उसके बाद आप देखेंगे कि आचार–विचार तो आपकी सेवा में अपने–आप ही आने लगेंगे। किन्तु यदि आप यह शर्त करेंगे कि पहले हमारा आचार ठीक हो जायेगा तब भगवान् का भजन करेंगे या हमारे विचार पक्के हो जायें, तब भगवान् का भजन करेंगे; तो जब आचार–विचार पक्का करने का कोई जरिया ही नहीं रहेगा, तरीका ही नहीं रहेगा तो आचार–विचार बनेगा कैसे ? इसलिये भाई मेरे, जैसे हो, वैसे ही भगवान् की ओर चल पड़ो। भगवान् स्वयं सम्भाल लेंगे। फिर तुम्हारा मंगल ही मंगल होगा।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 34

आप आने दीजिए अपने घर में, अपने हृदय में भगवान् को। फिर देखिए, आपके सारे बन्धन अपने आप कट जाते हैं कि नहीं? क्या आप यह समझते हैं कि भगवान् किसी के घर में प्रकट हों तो उसके बन्धन बन रहेंगे? यह चमत्कार नहीं है, यह भगवान् के सान्निध्य का, अपने हृदय में प्रकट होने का सहज स्वाभाविक परिणाम है कि हमारे जीवन के सारे बन्धन मिट जायें।

अरे, भगवान् तो वह होता है, जो सर्वज्ञ होता है, सर्वशक्तिमान् होता है और परम दयालु होता है। आप यह नहीं देखते कि जाति की राक्षसी, माँस-रक्त खाने-पीने वाली कंस की भेजी हुई पूतना कपटपूर्ण होकर अपने वक्ष:स्थल में जहर लगाकर श्रीकृष्ण भगवान् के सम्पर्क में उन्हें मारने के लिए आती है और उसका कल्याण हो जाता है। तो यदि कोई प्रेम से भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करेगा, उन्हें अपने वक्ष:स्थल का दूध पिलायेगा, उनका हाथ अपने कन्धे पर रखकर चलेगा, उनके साथ नाचेगा, गायेगा, उनका ध्यान करेगा तो उसे क्या मिलेगा—आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जब बड़े-बड़े कपटी राक्षस का भी कल्याण कर देते हैं, तब वे आपका कल्याण क्यों नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे।

इसलिये आप निराश मत होइए, उदास मत होइए। आपके हृदय में भी भगवान् आयेंगे, आपका भी दूध पियेंगे और आपके बालक भी बन जायेंगे। आप भगवान् को भगवान् मानिये तो सही! आप तो उनकी लीलाओं में चमत्कार देखते हैं। भगवान् कोई चमत्कार नहीं करते, उनके तो सहज स्वभाव में ही सबकुछ समाया हुआ है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 35

क्षीण हो रहा है क्षण–क्षण यह जीवन। काल निगल जाना चाहता है अभी–अभी। सारा संसार विनाश की ओर द्रुतगति से दौड़ रहा है। एक ओर यह दृश्य है तो दूसरी ओर परमानन्द स्वरूप प्रभु हमें अपनी गोद में लेने के लिये न जाने कब से प्रतीक्षा कर रहे हैं और अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। अज्ञान–निद्रा में सोया हुआ यह जीव यदि जग जाये तो वह अपने को परमात्मा की गोद में, उनके स्वरूप में ही पाकर निहाल हो जाये और स्वप्न की सारी विभीषिकाएँ निर्मूल होकर लीला के रूप में दीखने लगें। यह जागरण ही साधना है और यह करना ही होगा।

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत',
'उठो, जागो और बड़ों के पास जाकर जानो।'

ज्ञान साधना का विरोधी नहीं है। वह तो उसमें रहने वाले अज्ञानमात्र का ही विरोधी है। अज्ञान का नाश करके साधनाओं के स्वरूप की रक्षा करने में ज्ञान का जो महत्त्व है, वह कोई अनुभवी महापुरुष ही जान सकता है। इसलिये जैसे दूसरे साधकों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक साधनायें होती हैं, वैसे ही ज्ञानी के शरीर से भी सहज रूप में हुआ करती हैं। प्रमाद और आलस्य तो अज्ञान के कार्य हैं, जो आदर्श महात्मा में रह ही नहीं सकते। इसी से ज्ञान के पूर्वकाल में उन्हें जिन साधनों का अभ्यास हो जाता है, उन्हीं का शरीर के त्याग पर्यन्त सदा अनुष्ठान होता रहता है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 36

सवाल यह है कि सत्सङ्ग को किस ढंग से अपने जीवन में ढाला जाये कि जीवन में मुमुक्षा आ जाये। मुमुक्षा का अर्थ केवल छूटना-ही-छूटना नहीं होता है। मुमुक्षा का अर्थ होता है- सब प्रकार से निखिलानर्थ-निवृत्तिपूर्वक परमानन्द की प्राप्ति—माने अनर्थ से छूटना और साथ-ही-साथ परमानन्द की प्राप्ति करना। और, इसमें हेतु है महापुरुष का संश्रय-सत्सङ्ग। कहते हैं कि वृत्रासुर ने तो यहाँ तक कहा कि प्रभु, चाहे जितने भी सृष्टि-प्रलय हों और चाहे जितने भी हमारे जन्म हों, परन्तु हमको जन्म-जन्म में, जो महानुभाव पुरुष हैं, सद्भावयुक्त महापुरुष हैं, उनका संग प्राप्त हो। इसका अर्थ हुआ कि हमारी 'कम्पनी' अच्छी रहे। हमारी 'सोसायटी' अच्छी रहे। हम कहीं बुरी 'कम्पनी' बुरी 'सोसायटी' में पड़कर अपनी बुद्धि को नष्ट न कर बैठें, अपने चरित्र को नष्ट करने वाली जो वस्तुएँ हैं, उनका सेवन न करने लग जायें, उनमें न उलझ जायें, हमारा हृदय न उजड़ जाये। सब खजानों का खजाना हमारा हृदय है और यह हमेशा सुरक्षित रहना चाहिए।

वेदान्ती लोग तो सर्वभूत में जो हित अर्थात् निहित परमात्मा है, उसके प्रति प्रेम को '**सर्वभूतहिते रताः**' कहते हैं-अद्वैत उपासना के प्रसंग में वाक्य आया है। तब 'रत' शब्द का अर्थ क्या होगा ? भोजनादि से जो तृप्ति होती है, धनादि से जो तुष्टि होती है और स्त्री-पुरुष के मिलन से जो रति होती है, वह सब परमात्मा में ही होनी चाहिए। परन्तु, वेदान्तियों

के इस अर्थ को यदि छोड़ भी दिया जाय तो यहाँ जो 'रति' है, सर्वभूतों के हित में है। सर्वभूतों का हित क्या है? उनको असत् से सत् की ओर, तमस् से ज्योति की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर चलने की प्रेरणा देना। यह आसक्ति नहीं है, यह तो परम कल्याण-स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का प्रशस्त पथ है। अतः '**सर्वभूतहिते रताः**'-यह आसक्ति नहीं है, महात्मा का स्वभाव है, सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति उसकी अहैतुकी करुणा है।

जिसकी एक व्यक्ति से आसक्ति हो जाती है, उसकी आसक्ति बाँध लेती है और जिसकी आसक्ति सबमें और सबमें स्थित परमात्मा में हो जाती है, उसकी आसक्ति कट जाती है। एक गिलास पानी यदि सारे रेगिस्तान में छिड़क दिया जाय तो उस पानी की जो गति होगी, वही सबके प्रति की हुई आसक्ति और प्रीति की गति हो जायेगी और इसलिए वह आसक्ति नहीं रहेगी अनासक्ति हो जायेगी।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 37

आप दूसरों को बहुत ज्यादा पहचानते हो। नाना-नानी, दादा-दादी को पहचानते हो, दोस्त-दुश्मन को पहचानते हो और न जाने कितने अपने-परायों को पहचानते हो। लेकिन क्या स्वयं अपने को भी पहचानते हो? रहीम कवि ने बड़े महत्त्व की बात कही है-

बिन्दु में सिन्धु समान, सुनि कोउ अचरज जानि करे।
हेरन हारि हिरान, रहिमन आपु हि आपु में।।

यह जो बिन्दु है माने तुम हो, इसमें समुद्र समाया हुआ है। इस परिच्छिन्नता में, इस कतरे में, इस एक टुकड़े में परिपूर्णता समायी हुई है। आश्चर्य नहीं करना, यहाँ तो ढूँढ़ने में अपना आपा ही खो गया है, अपने आप को भूलकर ही ढूँढ रहा है। दुनिया में जब तक तुम्हारे बहुत दोस्त-दुश्मन होंगे, बहुत रिश्तेदार-नातेदार होंगे, बहुत धन-दौलत होगी और तुम उन्हीं को देखने में लगे रहोगे, उन्हीं को गिनने और तिजोरी या बैंक में रखने में लगे रहोगे, तब तक अपने आपको भूले रहोगे।

इसलिए आप रोज दस मिनट सब चीजों को छोड़कर माने आप का किसी से कोई रिश्ता नहीं, कोई नाता नहीं, कोई सम्बन्ध नहीं, कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं, सब परमानन्द स्वरूप भगवान् ही है—इसका चिन्तन करो। यह ध्यान करो कि एक नन्दनन्दन श्यामसुन्दर, मुरलीमनोहर, पीताम्बरधारी ही इतने रूप धारण करके नृत्य कर रहे हैं। उनमें यदि आपकी रुचि होगी तो दूसरी चीज में आपकी रुचि घट जायेगी। और

जितनी-जितनी दूसरी चीज में आपकी रुचि घटेगी, उतना-उतना ही आप अपने को पहचानने लगोगे। अब आप सोचो कि मैं कौन हूँ? यदि तुम 'मेरे' वाले 'मैं' हो तो यही तुम्हारी गलती है। यह मेरा धन है, मैं धन वाला हूँ; यह मेरा मकान है और मैं मकान वाला हूँ—यही तुम बन गए हो।

कलकत्ते में जयदयाल कसेरा नाम के सज्जन थे। वे बताते थे कि एक दिन हमारे घर में दो महात्मा आए। मैंने उनको भोजन कराया। जब वे भोजन करके बैठ गए तब बोले कि आओ सेठ, तुमने हमें भोजन कराया है, भिक्षा दी है तो हम भी तुमको कुछ देकर जाते हैं। हमारी दो बातें गाँठ बाँध लो—यह मैं हूँ, यह मेरा है; यह धनी है, यह गरीब है और यह सुन्दर है, यह असुन्दर है—इन बातों का नाम ही संसार है। मैं-मेरे में ही यह संसार फलता-फूलता है। मैं-मेरे का मिट जाना, जीवन में असंगता आ जाना और परमात्मा की प्राप्ति हो जाना—इसी का नाम परमार्थ है।

तो भाई मेरे, जब नजर दूसरों पर से हटती है, तब अपने ऊपर आती है। नारायण, अपने को जानने के लिए संसार से वैराग्य आवश्यक है। संसार से वैराग्य होता है भगवान् की भक्ति से और भगवान् की भक्ति होने के बाद जानते हो क्या होता है? भगवान् कहते हैं कि भाई, दिन भर इस भक्त के सामने खड़े रहेंगे तो बहुत तकलीफ उठानी पड़ेगी। इसलिए, आओ इसी के रूप में हो जायें। फिर भगवान् अपनी आत्मा के रूप में ही साक्षात् अपरोक्ष हो जाते हैं, कभी आँख से ओझल होते ही नहीं।

'अपने आप को पहचानो'।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 38

आओ, मन को पहचानें–मन क्या है? ज्यों ही हमारी नींद टूटती है और हम जागते हैं, त्यों ही वह हमारे सिवाय दूसरी वस्तु में चला जाता है। जब हम सोने लगते हैं तो सोते समय वह दूसरे के पास नहीं रहता, अपने पास आ जाता है। अब मन को पहचानो!

दुनिया में यह मैं हूँ, यह मेरा है; यह मेरा पति है, यह मेरा बेटा है, यह मेरी प्रिय वस्तु है; यह चाय है, यह कॉफी है—इन सबकी पहचान कौन बताता है? दुनिया की सब चीजों की पहचान इस मन में ही भरी हुई है, आत्मा में नहीं। क्योंकि सुषुप्ति के समय आत्मा तो रहता है, परन्तु मन के सो जाने पर किसी की पहचान नहीं रहती। तो इस दुनिया को पहचानने का काम मन करता है। भागने का काम मन करता है। और, सोते समय लौटने का काम मन करता है। अच्छा, यदि मन को शुद्ध करके श्रवण–मनन–निदिध्यासन करें तो परमात्मा का ज्ञान इस मन में ही होता है। श्रुति भगवती कहती हैं–'**मनसैवेदमाप्तव्यं**' यह जो मन है, इसी में परमात्मा का ज्ञान, चिन्तन और मन में ही जो झूठ–मूठ मानी हुई अविद्या है, उसको दूर करने का सामर्थ्य भी है। यह जो अप्रमेय और निश्चल आत्मतत्त्व है, उसका मन से ही दर्शन होता है। नारायण, अपने मन को पहचानो!

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 39

संन्यास जयन्ती महोत्सव

जीवन में संन्यास की एक भूमिका होती है। वह बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ होती है–'यह मत खाओ, यह मत करो, यह मत छुओ, इत्यादि।' अज्ञान-दशा में संन्यास की भूमिका आवेशमूलक होती है। प्रेमदशा में जो कुछ अपना है वह सब प्यारे का कर दिया जाता है। अपना कुछ नहीं रहता है। विवेक-दशा में असंग होना होता है। बोध दशा में-

सोवत बैठत पड़त उताने, कहे कबीर हम वही ठिकाने।

ब्रह्मात्मैक्यानुभूति होने पर सब परमात्मा है— चाहे काम करो, चाहे चुप रहो, चाहे समाधि लगाओ।

नारायण! यदि कोई आपको अकस्मात् आकर डंडा दिखावे और आपसे कहे—'मैं तुमको मार ही डालूँगा,' तो आप तुरन्त उससे कहोगे— 'भैया! मुझे मारो मत। मेरे ये पाँच करोड़ रुपये ले लो, लेकिन मेरी जान छोड़ दो।' देखो! अपने पाँच करोड़ रुपये छोड़कर जान बचाने की वृत्ति है, वह मूलतः संन्यास का विवर्त है। अपनी आत्म रक्षा के लिये आप कहीं-न-कहीं अपना सब कुछ छोड़ने को तैयार हो जाते हैं। छोड़ने की यह मूलभूत वृत्ति ही संन्यास के रूप में प्रकट होती है। कोई लोग अधर्म छोड़ देते हैं, कोई धर्म भगवदर्पित करते हैं; कोई विवेक के द्वारा असंग होते हैं और कोई शास्त्रादेश के अनुसार अविरुद्ध विवेक के द्वारा अनात्म दृश्य-प्रपंच का बाध करके अपने ब्रह्मस्वरूप में स्थित होते हैं।

निवृत्ति की पराकाष्ठा ही संन्यास जीवन है। वस्तुतः यह संन्यास मानव-जीवन का एक सत्य है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 40

जैसे शरीर के लिए स्वास्थ्य चाहिए, वैसे ही चरित्र के लिए पवित्रता चाहिए और इन्द्रियों में संयम चाहिए, ताकि ये उच्छृङ्खल न हो जायें—जो नहीं बोलना चाहिए वह न बोले दें, जो नहीं सोचना चाहिए वह न सोच लें; जो नहीं करना चाहिए वह न कर लें; जो नहीं भोगना चाहिए वह न भोग लें। अर्थात् शरीर में स्वास्थ्य और चरित्र की पवित्रता की प्रधानता चाहिए, इन्द्रियों में संयम की प्रधानता चाहिए और मन में सद्भावना की प्रधानता हमेशा रहनी चाहिए। हमारे मन में किसी के प्रति दुर्भाव न हो। जब धर्म-व्याध के पास जाजलि ऋषि धर्म का तत्त्व पूछने के लिए गये, उन्हें बड़ी सिद्धि मिल चुकी थी और जब उन्होंने बीट करने वाले पक्षी की ओर देखा तो वह भस्म हो गया, पर एक पतिव्रता स्त्री की ओर उसी दृष्टि से उन्होंने देखा, तो उस पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा और फिर अन्त में उस पतिव्रता स्त्री के संकेत पर वे धर्म-व्याध के पास गये, धर्म का रहस्य पूछने। धर्म-व्याध ने बताया कि धर्म का रहस्य है-

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा।।

(शान्तिपर्व 262.16)

जो किसी भी प्राणी के प्रति 'यह पापी है' ऐसा भाव नहीं करता है—'**यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्।**' सांप जो काटता है, वह सांप का पाप नहीं; बिच्छू जो डंक मारता है वह बिच्छू का पाप नहीं है;

गाय जो दूध देती है वह गाय का पुण्य नहीं है। सब अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बरत रहे हैं, जीव भी और मनुष्य भी। उसमें किसी को पापी देखने का किसी को कोई अधिकार नहीं है। कर्म से, मन से, वाणी से किसी को पापी मत समझो। वह पापी हो कि न हो, इसकी जिम्मेवारी उसके ऊपर है, लेकिन जब तुम किसी को पापी समझकर देखने लगते हो तो वह पापी तुम्हारे हृदय में आ जाता है और तुम्हारा मन ही उस समय पापी होकर देखने लगता है और तुम समझते हो कि यह कोई दूसरा पापी मेरे मन में खड़ा है। लेकिन तुम्हारे मन में कोई दूसरा पापी नहीं खड़ा है, तुम्हारा अपना मन ही पापी का आकार धारण करके तुम्हें दिखाई पड़ रहा है। तो पापी-अवच्छिन्न चैतन्य से जब अन्तःकरण-अविच्छन्न चैतन्य की एकता होती है, तभी कोई पापी मालुम पड़ता है। इसलिए सावधान रहने की बात यह है कि दूसरे के बारे में हमारे मन में कोई दुर्भावना न हो। यह बात अपने जीवन में जमाने के लिए विश्वास की भावना परिपुष्ट करनी चाहिए और स्वयं अपनी ओर से सबके प्रति सद्भाव रखना चाहिए। कर्म में पवित्रता, इन्द्रियों में संयम, मन में सद्भावना और बुद्धि में विवेक रहेगा तो हमारा जो वास्तविक धर्म है, स्वरूप-धर्म है, सहज-धर्म है—वह सुरक्षित रहेगा।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 41

महाशिवरात्रि पर्व पर

"शिव" माने ईश्वर, परम कल्याण भाजन–**'शिवमस्ति अस्य इति शिवः'। शेते जगत् अस्मिन् इति शिवः।**

जिसमें प्रलय के समय सारा जगत्, सावकाश शयन करते हैं, उसका नाम है शिव।

पुराणों में वर्णन आता है–

महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत्।
एकेन लभते मुक्तिम् द्वाभ्यां शम्भुर्ऋणी भवेत्।

एकबार महादेव नामोच्चारण से मुक्ति मिलती है और फिर दो बार नाम का उच्चारण करने पर तो शंकरजी ऋणी हो जाते हैं।

यद् द्वयक्षरं नाम गिरेरितं नृणाम्,
सकृत्प्रसंगादधमाशु हन्ति तत्।

काशीवासी तो इस श्लोक का उच्चारण बराबर करते रहते हैं–

शिवः काशी शिवः काशी काशी काशी शिवः शिवः।
ये जपन्ति नरा भक्त्या तेषाम् मुक्तिर्न संशयः।।

बड़े–बड़े ब्रह्मरस प्रार्थी ब्रह्मज्ञानी महापुरुष जिन भगवान् शंकर के चरण–कमलों की आराधना करते हैं, ऐसे सदाशिव भगवान् शंकर के श्रीचरणों में शत–शत नमन।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 42

श्रीचैतन्य महाप्रभु जयन्ती

हम जिसकी उपासना करते हैं, उसमें ब्रह्मत्व का आरोप करते हैं। आरोपविधया ब्रह्म का ज्ञान होता है। बड़ी विलक्षण बात है।

अब देखो, 'नाम ब्रह्म है'–भगवान् का नाम ब्रह्म है–ऐसे नाम में हम ब्रह्मत्व-बुद्धि करते हैं। तो ब्रह्म हर काल में रहता है, इसलिये नाम का उच्चारण हर काल में किया जा सकता है।

शुद्धि-अशुद्धि, पाप-पुण्य दोनों में ब्रह्म रहता है; अतः नाम भी दोनों में रहता है। ब्रह्म में अन्यता बाधित है, तो नाम में अन्य साधनता बाधित है। माने जैसे ब्रह्म में दूसरे की सत्ता नहीं है वैसे नाम रूप साधन में दूसरे नाम रूप साधन की सत्ता नहीं है। ब्रह्म पाप और पुण्य से असंस्पृष्ट है, तो नाम भी पाप और पुण्य से असंस्पृष्ट है। नारायण, पापी और पुण्यात्मा होने में नाम लो, सोते नाम लो, बैठते नाम लो, जागते नाम लो, सर्व अवस्था में नाम लो–

शुचिर्वा ह्यशुचिर्वापि सर्वावस्थां गतोपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरो शुचिः।।

जैसे ब्रह्म सर्व देश में, सर्व काल में, सर्व वस्तु में, सर्व व्यक्ति में और सर्व भाव में अनुगत है, ऐसे नाम का चिन्तन करो कि नाम भी ऐसा ही है। जब नाम को ब्रह्म समझने चलेंगे तो ब्रह्म को समझ-समझ कर नाम में ब्रह्म को देखेंगे और वह नाम रूप प्रतीक जो है, वह ब्रह्मज्ञान का हेतु हो जायेगा।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 43

ईश्वर ने जीवों को यह स्वतन्त्रता दे रखी है कि मैंने तुमको बुद्धि दी है, उसके तराजू पर तौल लो और फिर अपने शरीर से कर्म करो। यदि तुम अहंकार नहीं करोगे तो तुमको अपने कर्म के फल का भोग अनिवार्य रूप से नहीं करना पड़ेगा। लेकिन यदि अहंकार करोगे, तुम्हारे हृदय में जो सद्बुद्धि है, सद्भावना है, उसका आदर नहीं करोगे और सत्कर्म नहीं करोगे तो जैसा भी कर्म होगा, उसका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा।

असल में भगवान् की ऐसी सरकार है, जिसने कर्म करने में तो स्वतन्त्र कर दिया है, लेकिन फल भोगने में पराधीन किया है। यदि कोई बुरा कर्म करेगा तो उसको उसके बुरे कर्म का फल भोगना पड़ेगा, क्योंकि फल-भोग में स्वातन्त्र्य नहीं है। कर्म में स्वातन्त्र्य है। हम बच्चे को खेलने के लिये स्वतन्त्र कर देते हैं लेकिन यदि कोई बच्चा खेल में गलती करता है, दूसरे के साथ बेईमानी करता है तो उसको उसका फल भोगना पड़ता है और अच्छा काम करता है तो उसको पुरस्कार दिया जाता है। इसी तरह सब मनुष्य ईश्वर के बच्चे हैं। भगवान् की व्यवस्था ऐसी नहीं है कि मनुष्यों को हमेशा के लिये नरक में डाल दिया जाय या हमेशा के लिये स्वर्ग में भेज दिया जाय। सत्कर्म के अनुसार सत्फल भी मिलता है और दुष्कर्म के अनुसार दुष्फल भी मिलता है।

इसीलिये यह बात ध्यान में रखकर मनुष्य को अपने कर्म का निर्वाह करना चाहिये। दुष्कर्म से दुःख मिलेगा-इस बात का विचार करके मनुष्य को सत्कर्म ही करना चाहिये! दुष्कर्म नहीं करना चाहिये।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 44

देखो भाई, यदि तुम अपनी तारीफ करने वालों के बीच रहोगे तो साधना नहीं होगी। फिर तो तुम अपनी तारीफ सुनने में लग जाओगे। यदि किसी एकान्त स्थान में कमरा बनाकर उसमें एयर-कंडीशनर लगाकर, गद्दे पर बैठकर और सेवा के लिये नौकर रखकर करने बैठोगे तो वह साधना नहीं, सुविधोपासना होगी।

असल में जहाँ प्रतिकूल वातावरण होता है, वहाँ वैराग्य बना रहता है। वहाँ आपकी किसी के प्रति आसक्ति नहीं होगी। प्रतिकूल वातावरण को आप इस भाव से देखिये कि भगवान् हमें चारों ओर से दबाकर यह कह रहे हैं कि तुम अपने में बैठ जाओ, छोड़कर भागने की कोई जरूरत नहीं है। जहाँ भी आप जायेंगे, वहाँ निन्दा करने वाले मिलेंगे। कहीं आपको ढोंगी समझने वाले मिलेंगे। यदि आप तारीफ और सुविधा के वातावरण में रहकर भजन करना चाहते हैं तो देह से आपकी मनोवृत्ति कभी ऊपर नहीं उठ सकती। इसलिये लोग अपने मन में कुछ भी सोचें, कभी-कभी व्यंग्य भी करते रहें तो उसे सहने की आदत आपको डालनी चाहिये। सहनशीलता भगवत्प्राप्ति मार्ग में एक साधना है, तितिक्षा है, तपस्या है और हमारे वैराग्य को परिपुष्ट करने वाली है।

तो नारायण, असल में जो प्रतिकूल वातावरण में अपनी समता को, सहिष्णुता को, तितिक्षा को और अपने वैराग्य को दृढ़ कर सकता है, उसी का भजन हमेशा के लिये पक्का होगा।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 45

भाई मेरे, आप देखिये कि आपके भीतर क्या-क्या विशेषतायें हैं। आप सबको जीवन दान दे सकते हैं— असल में सबके हृदय में ऐसी सत्ता है, ऐसी शक्ति है, ऐसा बल है और भगवान् के साथ सीधा सम्बन्ध है। अंश का अंशी के साथ सीधा सम्बन्ध होता ही है। इसलिये आप स्वयं को दीन-हीन न समझकर अपने जीवन से दूसरों को जीवनदान दीजिये, अपने ज्ञान से दूसरों को ज्ञान-दान दीजिये, अपने आनन्द से दूसरों को आनन्दित कीजिये और अपनी मेल-मिलाप की भावना द्वारा सबको मेल-मिलाप की भावना से भर दीजिये। आपके भीतर जो अज्ञात सत्ता, अज्ञात ज्ञान और अज्ञात आनन्द रह रहा है तथा अपरोक्ष होने पर भी आप जिसको पहचान नहीं रहे हैं, उसको प्रकट होने दीजिये। हमारे भगवान् केवल छिपकर रहने वाले नहीं हैं, वे जन-जन में, कण-कण में, क्षण-क्षण में प्रकट हो रहे हैं। आप सद्भाव से उनको देखिये।

सबका उपादान एक ही है— उपादान माने मसाला, मैटर। एक ही प्रकार का निमित्त है सबका और सबके हृदयों में समान रूप से भगवान् हैं। इसलिये आप इस साक्षात् अपरोक्ष भाव को, अपने स्वरूप को सब जगह प्रकट होने दीजिये। आप अपने को संकीर्ण मत बनाइये, उदीर्ण कर दीजिये। मानव शरीर का सार यही है कि वह सर्व रूप में परमात्मा-रूप एक तत्त्व का दर्शन-साक्षात्कार कर सके। यही सबके हित की बात है। आपसे वैसे नहीं होता तो भगवान् का नाम लेकर उस भाव को जगाइये। पत्थर में भगवान् की पूजा करके, शालिग्राम में, शिवलिंग में, अथवा किसी गढ़ी हुई मूर्ति में भगवान् की पूजा करके इस भाव को जगाइये कि इसमें भी भगवान् हैं।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 46

असल में मनुष्य के मन में जो उत्साह है, वही उसको सफलता देता है। एक प्राचीन श्लोक है–

'क्रिया सिद्धि सत्त्वे वसति नोपकरणे'

सत्पुरुषों को जीवन में जो सफलता मिलती है, वह उनके सत्त्व से मिलती है, सामग्री से नहीं। उनके पास कितने हथियार हैं और कितना खान-पान है, कितने पिछलग्गू हैं-इससे सफलता नहीं मिलती। सत्त्व माने उत्साह। तो जब मनुष्य के मन में अपना काम करने का उत्साह होता है तब उसे सफलता मिलती है।

अच्छा, यदि मनुष्य देशकाल को ठीक न समझे तो ? **भूताश्चअर्था विनश्यंति देशकाल विरोधिता:** यदि स्थान के विरुद्ध और समय के विरुद्ध आदमी कोई काम करे, तो चाहे कोई भी हो, वह अपने काम को बिगाड़ देगा। साथ ही मन में दुविधा भी नहीं रहनी चाहिये। क्योंकि, संशय काम को बिगाड़ता है। अत: सोच-विचार कर, अभिमान के वश में—शान में न आकर, उत्साहपूर्वक काम करना चाहिये। सफलता-ही-सफलता है।

नव संवत्सर मंगलमय होवे !

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 47

एक बात ध्यान रखने योग्य है—कई लोग सोचते हैं कि जब हमें ईश्वर मिल जायेगा तो हमारे काम, क्रोध आदि दोष सहज ही मिट जायेंगे। तब अन्तःकरण शुद्ध होगा। जब तक ईश्वर नहीं मिलता, तब तक इन्हें हृदय में ही रहने दें। पर यह तो ऐसा हुआ कि जीवन में साध्य पहले प्राप्त हो और साधन पीछे आये; किन्तु ऐसा हुआ नहीं करता। पहले जीवन में साधन आना चाहिये, तभी साध्य का उदय होता है।

इन्द्रियों का नियमन पहले होना चाहिये। कोई सोचे, जब हमारे मन में काम नहीं रहेगा, तब मैं ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करुँगा, तो वह निरे भ्रम में है। निष्कामता साधन और ब्रह्मचर्य साध्य नहीं। ब्रह्मचर्य व्रत साधन है और निष्कामता है साध्य। पहले व्रत धारण करना पड़ेगा, बाद में निष्कामता सम्पन्न होगी। जो यह सोचे कि पहले मेरा हृदय निर्लोभ हो जाये, तब मैं चोरी-बेईमानी छोड़ूँगा, वह कभी चोरी-बेईमानी छोड़ न सकेगा। पहले चोरी-बेईमानी छोड़नी पड़ेगी, तभी चित्त में निर्लोभता और संतोष आयेगा। अतः इन्द्रियों का संयम पहली बात है और हृदय की शुद्धि उसके बाद की। भगवान् का आविर्भाव तो हृदय की शुद्धि के पश्चात् ही होता है। जहाँ यह जीवन है, वहीं से साधन का प्रारम्भ होता है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 48

श्रीरामनवमी के पर्व पर

रामो विग्रहवान् धर्मः।

श्रीवाल्मीकि रामायण में आया है, 'श्रीरामचन्द्र ने अर्थ और धर्म दोनों को एक साथ प्रतिष्ठित किया है—'**धर्मश्चापि श्रिया सह**'; बल्कि यह भी वर्णन आया है कि '**धर्म सर्वात्मनाश्रितः**'-रामचन्द्र के जीवन में धर्म कभी अलग नहीं होता, सदा-सर्वत्र साथ रहता है—घर में हों तो घर में, वन में हों तो वन में और रण में हों तो रण में। इसीलिये कहा गया कि यदि धर्म की मूर्ति को प्रत्यक्ष देखना हो तो श्रीरामचन्द्र को देख लो!

देखो, अर्थ होता है बाहर और काम होता है मन के भीतर। काम-विषयक जितने भी सुख-दु:ख हैं, सब मन में ही होते हैं। इनके निमित्त भले ही बाहर हों, लेकिन इनका अधिकरण मन में ही होता है। उस मन को श्रीरामचन्द्र ने इतना संयमित और नियंत्रित कर रखा था कि विवेक-बुद्धि की अनुमति के बिना उसकी कहीं प्रवृत्ति नहीं होती थी। विवेक-बुद्धि द्वारा सम्मत पदार्थों अथवा प्रसंगों की ओर ही उनका मन जा पाता था। और, उसी विवेक-बुद्धि में धर्म का निवास होता है; धर्म-बुद्धि ही अच्छे या बुरे का ज्ञान कराती है। नारायण, ऐसे ही धर्म को धर्म कहते हैं। जो धर्म परिस्थितियों के अनुसार, कालक्रम के अनुसार, भूगोल के अनुसार, जाति के अनुसार, आचार्य के अनुसार, यहाँ तक कि परम्परा के अनुसार बदलता रहता है, वह वास्तविक धर्म नहीं होता।

असल में जैसे ईश्वर एक होता है, वैसे ही धर्म भी एक होता है। हमारे जीवन में उस अपरिवर्तनीय और अनन्य धर्म की स्थापना तभी होती है जब उच्छृंखलता का निवारण हो जाता है। उच्छृंखलता का निवारण होते ही अपने आप धर्म-स्थापना हो जाता है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 49

कपट छोड़कर साधु संग करो, तब भगवद्-भक्ति में सच्चाई गाढ़ी होती है। सत्संग करने से जब सच्चाई गाढ़ी होती है, तब गुरु मिलता है। गुरु मिलता है तब उसके द्वारा बताये हुये मंत्र का जप होता है, तब इष्टदेव का ध्यान होता है, मानसी सेवा होती है, हमारी वृत्ति परमार्थ के एक देश को छूने लगती है। वृत्ति व्यवहार में भी जाती है, परमार्थ में भी जाती है। जब रुचि उत्पन्न होती है, तब परमार्थ में ज्यादा रहती है, व्यवहार में कम जाती है। जब भाव का उदय होता है, तब परमार्थ में बहुत जाती है; व्यवहार में केवल बाधितानुवृत्ति-न्याय से आभास में ही जाती है और जब प्रेम हो जाये भगवान् से तब ? नारायण, जब प्रेम का उदय होता है, तब तो 'मैं' और 'मेरा' लीन हो जाता है भगवान् में। 'मैं भगवान् का और मेरे भगवान्। न मैं संसार में किसी का और न संसार का कुछ मेरा।'

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 50

आप शोक क्यों करते हो ? जो हो रहा है, उसके लिये शोक करते हो ? वह तो हो ही रहा है। जो होने वाला है, उसके लिये शोक करते हो ? क्या तुम्हें मालुम है कि वह क्या होगा ? एक प्रश्न है; यह आप ध्यान दीजिये कि अगले क्षण में आपके मन में क्या इच्छा उत्पन्न होगी—क्या इस समय आपको मालुम है ? नहीं। क्या कोई ज्योतिषी यह बता सकता है ? नहीं। भूत बताने वाले ज्योतिषी दुनिया में बहुत होते हैं। छः वर्ष में क्या होगा ? दस वर्ष में क्या होगा ? चार महीने में क्या होगा—यह बताने वाला भी संयोग वश कोई ज्योतिषी मिल सकता है, हम इसको अस्वीकार नहीं करते हैं; परन्तु अगले क्षण में आपके मन में क्या इच्छा होगी, यह आप स्वयं नहीं जानते हैं, तो दूसरा यह क्या बतावेगा ? तब फिर ? जहाँ पूरा- का-पूरा अज्ञात है, वहाँ चिन्ता किसकी ?

वैसे शोक भूत के लिये ही होता है। शोक होना माने भूत लगाना। पहले इतना धन था, अब नहीं है। पहले इतनी प्रतिष्ठा थी, अब नहीं है। पहले इतना आनन्द था, अब नहीं है। भूत लग गया, शोक लग गया। और भय ? भय भविष्यत्-वृत्ति है—आगे नुकसान न हो जाये; ऐसा न हो जाये, वैसा न हो जाये। इसे इस तरह समझिये—आदमी चल रहा होता है और पाँव पीछे की ओर फिसल जाता है तो वह पीछे की ओर गिर पड़ता है और यदि पाँव आगे की ओर फिसल जाता है तब वह आगे की ओर गिर पड़ता है। और, नारायण यदि वर्तमान के दल-दल में ही पाँव धँसा रखें

तो ? तो फिर आगे नहीं बढ़ सकता। असल में, न भूत में फिसलिये, न भविष्य में फिसलिये और न ही वर्तमान के दल-दल में धँसे रहिये। भूत, भविष्य, वर्तमान सबकी परवाह किये बिना, केवल परमात्मा को देखते रहिये। आगे बढ़ रहे हैं, कि पीछे जा रहे हैं, कि दाहिने जा रहे हैं, कि बायें जा रहे हैं-सब ओर परमात्मा हैं।

'मा शुचः'

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 51

कई भक्त ऐसे हुए हैं कि उनके सामने भगवान् प्रकट होते हैं। भक्ति की यह जो बात है, यह बिलकुल व्यावहारिक है। व्यावहारिक है माने जैसे हम तुमको देख रहे हैं और तुम हम को देख रहे हो, जैसे अपनी आँखें मिलती हैं, वैसे जब भगवान् का ध्यान करते हैं, प्रेम करते हैं तो वह अपने आध्यात्मिक जीवन का सत्य तो होता ही है, व्यावहारिक सत्य भी होता है।

आपको जैसे किसी से प्रेम हो और उसी का सपना आवे, तो जितनी देर तक सपना रहता है, सपना स्वकाल में सच्चा होता है कि नहीं होता है? जितनी देर सपना होता है, उतनी देर किसी को मिथ्या थोड़े ही मालुम पड़ता है! उतनी देर तक तो बिलकुल सच्चा ही होता है। उठने पर मालुम पड़ता है कि मिथ्या है।

लेकिन यह जो भगवान् की लीला भक्त की भावना के परिपाक से दृष्टिगोचर होती है, इसमें एक ओर तो भगवान् का कहो, चाहे गुरु का कहो—अनुग्रह है और एक ओर भजन करने वाले की श्रद्धा है। श्रद्धा और अनुग्रह के मिश्रण से भगवान् का यह आविर्भाव होता है। हृदय में श्रद्धा न हो तो भगवान् का आविर्भाव न हो और भगवान् का अनुग्रह न हो तो भी भगवान् का आविर्भाव न हो। हाँ, जैसी भक्त की श्रद्धा, वैसा भगवान् का अनुग्रह!

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 52

श्रीवल्लभाचार्य जयन्ती पर

भगवत्-कृपा कब क्यों और कैसे होती है—इसके बारे में कुछ निश्चित मापदण्ड नहीं बना सकते। कहते हैं कि एक आदमी बड़ा भक्त था। उसके घर में धन आ गया। धन आ गया तो भूल गया भगवान् को। भगवान् ने कहा—'अहा! मैं तो इसके ऊपर बहुत खुश था। मैं ही आने वाला था उसके दिल में! धीरे-धीरे यह तो धन से प्रेम कर बैठा', उन्होंने धन को दबा दिया। दबा दिया तो फिर उसको ख्याल आया कि—किसने धन दिया था? भगवान् ने दिया था। किसने ले लिया? भगवान् ने ले लिया। अरे! तो भगवान् का भजन ही करना चाहिये। देने-लेने वाले तो वही हैं।

तो शरीर में रोग होने पर भगवान् का स्मरण आता है, संकट आने पर भगवान् का स्मरण आता है, निर्धनता आने पर भगवान् का स्मरण आता है। सो भगवान् कब किस पर कैसे कृपा करते हैं, यह बात समझ में नहीं आती है। वे तो अपने भक्त की भलाई चाहते हैं। बच्चा अगर ज्यादा जिद्द करता हो, तो दो चपत लगा करके भी उसकी भलाई करनी पड़ती है। भगवान् अपने भक्त को उसके प्रारब्ध का फल नहीं देते। जैसे अपनी भलाई हो, वह करते हैं। माँ जब अपने बच्चे को मारती है, तब उसके प्रारब्ध का फल नहीं देती है, वह तो अपना स्नेह ही देती है उसको।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 53

नारायण, ईश्वर को बनाना तो है नहीं। बनाना तो अपना दिल है। रुपये की कीमत नहीं है सृष्टि में। करोड़ रुपये यदि समुद्र में फेंक दिये जायें और हृदय में सद्भाव की ज्योति एक क्षण के लिये यदि प्रज्वलित हो जाये, तो हृदय में प्रज्वलित होने वाली सद्भाव की ज्योति की कीमत ज्यादा है और करोड़ रुपये की कीमत कम है। करोड़ रुपये स्थूल हैं, कंकड़ हैं, पत्थर हैं। उसमें क्या है?

अपने हृदय का सद्भाव दुर्लभ है और वह कीमती है। भक्त अपने हृदय का निर्माण चाहता है। कौन छोटा है, कौन बड़ा है; कौन बुरा है, कौन भला है, उससे उसका क्या मतलब? उसको तो यह देखना है कि हमारे हृदय का निर्माण हुआ कि नहीं? अरे! मकान का निर्माण हुआ बहुत बढ़िया। देह को सजाया-सँवारा खूब बढ़िया। लेकिन भीतर का बिगड़ गया तो? अरे! भीतर का बिगड़ गया तो बाहर का किस काम का? मुख्य है अपने हृदय का निर्माण करना। अतः सद्भाव सम्पत्ति बढ़ाओ!

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 54

श्रीशंकराचार्य जयन्ती पर

आवरण लक्ष्य पर नहीं है। अपना आत्मा ही अविचारित-अज्ञात होकर आवृत्त सा प्रतीत हो रहा है। अज्ञात-रूप से आत्मा ही अन्य सा, अप्राप्त सा भासता है। न केवल लक्ष्य स्वतः प्राप्त है, वस्तुतः साधन भी स्वतः प्राप्त ही है। अनन्तता अपना स्वयं सिद्ध स्वरूप है तो ज्ञान क्या अपना स्वयं सिद्ध स्वरूप नहीं है। अनित्यता हमें छू नहीं सकती—हम विविक्त हैं। अद्वितीय असंग में राग कहा? हम विरक्त हैं। मन, इन्द्रिय, कर्म, शरीर, अभिमान, मनोराज्य—इनका विषय या आश्रय आत्मा नहीं है फिर षट् सम्पत्ति की न्यूनता अपने स्वरूप में कहाँ? बन्धन किसका किसको और क्या?

निश्चय, निर्णय एवं स्थिति को श्रवण, मनन और निदिध्यासन कहते हैं। पिछले दो पहले की अहमता या प्रतिबन्ध को मिटाते हैं। निश्चय अन्य विषयक हो तो प्रवर्त्तक निवर्त्तक होता है। स्व विषयक निश्चय साध्य का नहीं, सिद्ध का होता है। सिद्ध वस्तु का अनिश्चय से कुछ बिगड़ता नहीं निश्चय से बनता नहीं। वह तो ज्यों का त्यों रहता है। केवल सत् हो तो। चित् तो निश्चय-अनिश्चय का प्रकाशक है। उसे उनकी आवश्यकता नहीं। आनन्द हो और स्व हो तो निश्चय का कोई प्रयोजन ही न रहा। क्या अपना होना, जानना और प्रियता अपरोक्ष निश्चित नहीं है?

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 55

श्रीरामानुजाचार्य जयन्ती पर

पवित्रता क्या है? आप इस पर ध्यान दें। हम जानते हैं कि आप अपने शरीर के बारे में बहुत सावधान हैं। कितना खाते हैं, कहाँ जाते हैं, कैसे रहते हैं, रोग शरीर में न आये और आरोग्य बना रहे—इसके लिये आप बहुत सतर्क हैं। परन्तु आपका जो अन्त:करण है, उस पर आपका कितना ध्यान है? बाहर की चीजें तो साथ रहें या न रहें, लेकिन आपका मन तो आपके बिलकुल निकट है, साथ है। यदि आपका मन दु:खी रहेगा, आपका मन अज्ञान में रहेगा, आपका मन भय में रहेगा, शोक में रहेगा तो आपके बाहर चाहे जितनी भी चीजें हों, आप कभी उनसे सुखी नहीं रह सकेंगे। सुखी रहने की तो विद्या ही दूसरी है। आप रोटी चुपड़ी खायें या रूखी खायें- उससे कोई मतलब नहीं है। पर आपका मन तो रूखा न रहे, सूखा न रहे। मन को तृप्त रखने के लिये, करुण-रस से परिपूर्ण रखने के लिये, दूसरों के ऊपर दया चाहिये। आपका मन पिघला हुआ रहना चाहिये, जिससे कि वह दु:खियों पर दया कर सके। आप अपने मन से ऐसी चीज न सोचें कि वह क्रूर हो जाये, दूसरों को दु:ख देने वाला हो जाये। अत: आप मन से विचार करें, वह ऐसा निर्मल हो कि उससे निर्मल वातावरण बन जाये।

यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि हम अपने मन में जैसा सोचते हैं, उसका मण्डल हमारे आसपास बन जाता है। किसी का परि-

मण्डल बड़ा बनता है तो किसी का छोटा बनता है; लेकिन बनता अवश्य है। हमारे शरीर से जो तन्मात्राएँ निकलती हैं, विचार के जो सूक्ष्म कण प्रवाहित होते हैं, वे हमको चारों-ओर से घेरे रहते हैं। यदि वे रश्मियाँ, तन्मात्राएँ, किरणें हमारे मानसिक विचार के अनुकूल हों और सद्भाव से सम्पन्न हों तो हमारे पास आने वाला, हमारे वातावरण में रहने वाला भी पवित्र विचारों से सम्पन्न हो जाता है। इसलिए, हमारे मन की जो पवित्रता है, उससे केवल अपना ही कल्याण नहीं है, वह सम्पूर्ण समाज के लिये, सम्पूर्ण विश्व के लिये मंगलमय है। शास्त्र का ऐसा कहना है कि **'वज्रात् त्रायते इति पवित्रः'** यदि व्यक्ति पवित्र है और उसके ऊपर वज्र गिरने वाला हो तो वह वज्र भी उसका बालबांका नहीं कर सकता। हृदय की पवित्रता ही धर्म का वास्तविक स्वरूप है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 56

एक बार मैं भगवान् का ध्यान करने लगा। तो भगवान् से मैंने कहा कि तुम सामने खड़े हो जाओ और हम तुम्हारी ओर मुँह करके तुमको देखते हैं। अब महाराज हमारी और भगवान् की लड़ाई हो गई। क्या लड़ाई हो गई ? वे कहें कि देखो, अगर हमारा मुँह तुम्हारी ओर और तुम्हारा मुँह हमारी ओर रहेगा तो हम दोनों आपस में लड़ जायेंगे। हमारी नाक, मुँह, सिर, छाती परस्पर लड़ जायेगी। ऐसे नहीं बनेगा। तो भगवान् ने जबरदस्ती की। बोले कि हम, तुमसे एक होकर बैठेंगे और तुम्हारी नाक हमारी नाक रहेगी, तुम्हारी जीभ हमारी रहेगी, तुम्हारा सिर हमारा सिर रहेगा। हम आमने-सामने नहीं रह सकते। जिधर तुम्हारी पीठ है, उधर हमारी पीठ रहेगी। अब मैं भगवान् से कहूँ कि नहीं आप सामने बैठो! आपकी पीठ रहेगी दक्षिण को और हमारी पीठ उत्तर को! आओ हृदय से लगें! भगवान् बोले कि नहीं, ऐसे नहीं होगा। हमारी-तुम्हारी छाती एक रहेगी, हमारी-तुम्हारी पीठ एक रहेगी, हमारा-तुम्हारा मुँह एक रहेगा। नारायण, जो लोग आमने-सामने भगवान् को बैठाते हैं, भगवान् कहते हैं कि ए, हम तुमसे अलग नहीं बैठेंगे! यह देखो, यह भी एक मैत्री का नमूना है। आप कभी ध्यान करके देख लेना। बिलकुल आपसे एक होकर भगवान् बैठ सकते हैं। ये ईश्वर और जीव सखा हैं भला!

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 57

आप जानते हैं कि दोषों की सफाई देने का क्या अर्थ है? अद्‌भुत मनोविज्ञान है इसका। दोष घटित होने के पहले उसकी सफाई का ज्ञान नहीं रहता। जब दोष कर लेते हैं, तब अक्ल से सोचते हैं कि हमने जो गलती की है, उसकी वजह क्या बताना है? आप ध्यान करके देख लेना कि हम लोग गलती करने के बाद उसकी वजह सोचते हैं। यह वकालत है, वकील का काम है जज का काम नहीं है।

अच्छा, गलती की सफाई देने का मतलब क्या है? यही है गलती को सकारण बताना और यह सिद्ध करना कि हमने इस कारण से ऐसी गलती की। लेकिन जब कारण से गलती की गयी तो वह गलती कहाँ हुई। आप तो कह रहे हैं कि हमने गलती नहीं की। इसलिये हमारा शास्त्रीय विधान है कि अपने अन्दर जो दोष हो उसको दिल से स्वीकार करके आगे वह दोष न हो, इसके लिये सावधान रहना चाहिये।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 58

केवल विघ्न-ही-विघ्न की बात सोचते रहना और काम आरम्भ नहीं करना हीन पुरुष का लक्षण है। मध्यम पुरुष काम आरम्भ तो कर देते हैं, परन्तु जब कोई विघ्न आता है तब उसे छोड़ देते हैं। किन्तु उत्तम पुरुष की पहचान यह है कि बारम्बार विघ्न आयें और आकर चोट पहुँचायें, घायल करें, फिर भी वे अपने कर्म को बीच में नहीं छोड़ते। उनकी दृष्टि में यदि कर्म उत्तम है तो विघ्नों की कोई परवाह नहीं है।

इस सम्बन्ध में मैंने श्रीउड़ियाबाबा जी महाराज के मुँह से एक बात सुनी थी और जब सुनी थी तब वह बहुत अच्छी लगी थी। ऐसी अच्छी लगी थी कि मानों कोई अज्ञात-ज्ञापन हो गया हो, एक अनजानी चीज जानी गयी हो। इसलिये उस दिन बड़ी खुशी हुई। और, वह बात आज भी मुझको उतनी अच्छी, उतनी महत्त्वपूर्ण लगती है। वह बात यह है कि हम जो काम करते हैं, उससे हमको कुछ मिलेगा—यह आवश्यक नहीं है। काम का उद्देश्य अपनी आदत को अच्छा बनाना है। हमारी आदतें अच्छी बनें, यह सोचकर काम करना चाहिये। किसी ने किसी को पानी पिलाया और पानी पीने वाले ने पिलाने वाले को दो-चार रुपये पुरस्कार दे दिये—यह अच्छा काम करने का फल नहीं है। अच्छा काम करने का फल यह है कि हमारी आदत अच्छी बने। क्या दो-चार गिलास पानी पिला देना अपने आप में इतना अच्छा नहीं है कि हम उससे सुखी हो जायें? यही तो मालिक और नौकर का फर्क है। एक उत्तम कर्म करने के बाद हमको जो प्रसन्नता होती है, उस प्रसन्नता से बढ़कर और कोई दूसरा फल उसका नहीं है। यही चित्त-प्रसाद है, यही मन की निर्मलता है, यही अन्तःकरण की शुद्धि है कि हम काम करके ही खुश हो जाते हैं। अपना काम करके यदि हमारा मन निर्मल हो रहा है, शान्त हो रहा है तो यह सबसे बड़ा फल है। कर्म के बदले में कुछ पाना—यह उसका फल नहीं है।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 59

एक बात आपको बतावें—भले आदमी निर्वाह कर ले दुनिया में, लेकिन आदमी दूसरे आदमी का पूरा-पूरा विश्वास कम ही करता है। बरस-दो बरस, चार बरस अगर हो भी जाये न, तब भी बाद में अलग-अलग बक्सा, अलग-अलग खजाना, अलग-अलग गुफ्तगू शुरु हो ही जाती है; तो त्याग अन्त में करना ही है। स्वत्व अपना मानने से ही तो कष्ट है न! नारायण, जैसे तृण से कुआँ ढका रहता है, वैसे संसार की जो सम्पत्ति है न, इसके साथ मृत्यु ढंकी रहती है। अरे बाबा, कुछ पता है कि कब तक शरीर रहेगा? पता नहीं, मृत्यु के पहले त्याग का अवसर मिले कि न मिले! बस, जिससे जीवन निर्वाह-मात्र होवे, उतना ही रखें। येन-केन-प्रकारेण भगवान् में मन लगा रहे—इससे बढ़कर तो और कोई साधन-भजन है नहीं।

जो लोग बस 'विषय-विषय-विषय', 'यह चाहिये, यह चाहिये, यह चाहिये में रत हैं, उनको परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता। जब तुम घड़े में, घड़ी में, कमरे में, मकान में, स्त्री में, पुत्र में दिन-रात संलग्न हो तो भीतर रहने वाला जो नारायण है, वह कैसे तुम्हारे सामने प्रकट होवे?

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 60

क्षमा बलवान् मनुष्य का धर्म है, निर्बल मनुष्य क्षमा को कभी अपने जीवन में धारण नहीं कर सकता। किसी ने गलती की और हम सोचने लगे कि इसका क्या करें! तो यह हमारी मजबूरी है। दण्ड देने का सामर्थ्य अपने अन्दर रहने पर भी हम चाहें तो उसको क्षमा कर सकते हैं। परन्तु कभी-कभी हम क्षमा का उलटा व्यवहार करते हैं। उलटा व्यवहार कब होता है? जब हम स्वयं तो करते हैं गलती और सोचते हैं कि अच्छा भाई, ऐसा तो होता ही रहता है। लेकिन दूसरे से गलती हो जाये तो? उसके सिरपर सवार हो जाते हैं कि तुमने यह गलती क्यों की? यह मनुष्यता की सीमा का उल्लंघन है। अपने को क्षमा करने के लिये क्षमा नहीं है, दूसरों को क्षमा करने के लिये क्षमा है। अपने से कोई गलती हो जाये तो उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये, उसके लिये पछताना चाहिये। फिर हम ऐसी गलती नहीं करेंगे, इसका दृढ़ निश्चय होना चाहिये। अपनी गलती पर अपने को क्षमा नहीं किया जाता, सामने वाले की गलती पर उसको क्षमा किया जाता है।

नारायण, अगर आप दण्ड देना शुरु करेंगे तो सबसे ज्यादा दण्डनीय निकलेंगे आप! क्योंकि आप अपने सब अपराधों को, सब अवगुणों को जानते हैं। आपसे कम दोषी निकलेंगे आपके घरवाले-पत्नी, पुत्र, पुत्री आदि तथा सम्पर्क में रहने वाले अन्य लोग। फिर आप किस-किस को दण्ड देंगे? दण्ड देते-देते आपका सारा जीवन बीत जायेगा, लेकिन

अपराध तो कम न होगा। दण्ड देने का काम शासन का है, वह दण्ड दे। आप दूसरों को दण्ड देने की चिन्ता में अपने दिल को क्यों बिगाड़ते हैं? मेरे भाई, आप दूसरों को क्षमा करो, ईश्वर आपको क्षमा करेगा। यदि आप दूसरों को क्षमा नहीं कर सकते हो तो किस मुँह से अपने अपराध के लिये ईश्वर से क्षमा माँग सकेंगे?

इसलिये क्षमाशील बनिये!

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 61

देखो, जिसको स्वागत, सत्कार लेने की बहुत आदत पड़ जाती है, उसका स्वभाव बिगड़ जाता है। वह जल्दी-जल्दी नाराज होने लगता है। इन्होंने हमको हाथ क्यों नहीं जोड़ा, ऊँचे आसन पर क्यों नहीं बैठाया— इसके लिये भी उसको दु:ख होने लगता है। इसलिये मनुष्य को सत्कार लेने की आदत ज्यादा नहीं डालनी चाहिये। संसारी लोग भोगी होते हैं और महात्मा लोग श्रद्धा-भोगी होते हैं। विषय के बिना संसारियों को और श्रद्धा के बिना साधुओं को तकलीफ होती है। श्रद्धा भी एक भोग ही है। अरे बाबा, ऊँचे-नीचे बैठने में क्या है? कहीं भी बैठ जाओ। कोई प्रणाम करे तो ठीक और न करे तब भी ठीक। बल्कि कोई प्रणाम न करे तो समझो कि अच्छा किया। क्योंकि ऐसा करके वह हमारे समान हो गया, हमसे एक हो गया।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 62

देखो, एक आदमी गलती करे तो आप उसको माफ कर दो, तब गलती एक ही रहेगी। एक ने अपराध और दूसरे ने क्षमा किया, काम बन गया। किन्तु एक के अपराध करने पर दूसरा भी अपराध करे, फिर तीसरा–चौथा भी अपराध करे तो अपराध की वृद्धि हो जाती है। क्रोध–पर–क्रोध किया जाता है तो वह सारे संसार में व्याप्त हो जाता है। किन्तु जब क्रोध को क्षमा कर दिया जाता है तो वह घट जाता है। अगर आप दुनिया में से क्रोध को घटाना चाहते हैं तो क्षमा करने का अभ्यास डालिये, क्रोध पर क्रोध मत कीजिये; अन्यथा वह बड़ा भारी दु:ख देगा, उसका गणित बहुत लम्बा है। इसलिये, जिस काम से राग–द्वेष बढ़े, वह नहीं करना चाहिये।

❖ ◆ ❖

आनन्द सत्संग पत्रक – 63

सत्सङ्ग किसलिये है? हृदय में जो असत् संस्कार है—असत् वासना का संस्कार असत् संग का संस्कार—इन सब को मिटाने के लिये सत्सङ्ग गङ्गा है। सत्सङ्ग की गङ्गा में डुबकी लगाओ! '**गङ्गा पापं, शशि तापं**'—गङ्गा में स्नान करो, पाप मिट जाये और चन्द्रमा की चाँदनी में बैठो, शरीर का ताप मिट जाये। परन्तु, यह सत्सङ्ग तो सब पाप-ताप-कलुष- संस्कार सब को धोने वाला है। अपनी दरिद्रता लेकर नहीं जाना सत्सङ्ग में—'यह चाहिये, यह चाहिये, यह चाहिये।'

जिस समय मनुष्य सत्सङ्ग में जाता है न, उस समय घर के राग-द्वेष जो भी हैं वे एक ओर धरे रह जाते हैं। क्योंकि यह जो भगवान् के नाम की, भगवान् के गुण की, भगवान् की लीला की अमृत-वर्षा है, यह तो चोरी का भाव, छल का भाव, कपट का भाव, सब अनिष्टों को मिटा देती है। यह तो सभा ही मङ्गलकारिणी है।

❖ ◆ ❖